卐 श्री वीतरागाय नमः 卐

षोडशकारण भावना



रचयिता

स्व० पं० सदासुखजी कासलीवाल
जयपुर



प्रकाशक

वीर पुस्तक भण्डार

मनिहारों का रास्ता, जयपुर

भाद्रपद सं० २०२१] [मूल्य १)२५

मुद्रकः—श्री वीर प्रेस, मनिहारों का रास्ता, जयपुर।

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥



स्व० श्री पं० सदासुखजी कृत

षोडश कारण भावना

षोडश कारण भावना हू श्रावक के भावने योग्य है। षोडश कारण भावना का फल तीर्थंकरपना है। इनही करि तीर्थङ्करप्रकृति का बंध अव्रती सम्यग्दृष्टि हू कैं होय अर देशव्रती श्रावकहू कै होय अर प्रमत्तसंयतहू कै होय है। सर्वोत्कृष्ट पुण्यप्रकृति तीर्थंकर प्रकृति है। इसतैं अधिक पुण्यप्रकृति त्रैलोक्य में नाहीं है। उक्तं च गोमट्टसारे कर्मकांडे—

पढमुवसमिये सम्मे सेसतिये अविरदादि चत्तारि।
तित्थयरबंधपारंभया णरा केवलिदुगंते ॥ ९३ ॥

अर्थ—तीर्थंकर प्रकृति के बंध का आरम्भ कर्मभूमि का मनुष्य पुरुषलिंगधारी ही कै होय है, अन्य तीन गति में आरम्भ नाहीं होय। अर केवली तथा श्रुतकेवली के चरणारविंदकै समीप ही होय,-केवली श्रुतकेवली का

निकट विना तीर्थंकर प्रकृति का बंध के योग्य भावना की विशुद्धता नाहीं होय है। अर तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध प्रथमोपशमसम्यक्त्व में होय तथा शेपत्रिक जो द्वितीयोपशम तथा क्षयोपशम तथा क्षायिक इन च्यार सम्यक्त्व में कोऊ एक में होय है। इस तीर्थंकर प्रकृतिबंध के कारण षोडशकारण भावना हैं। ये भावना समस्त पाप का क्षय करने वाली, भावनि के मलकूं विध्वंस करने वाली, श्रवण पठन करते संसार के बंध छेदने वाली निरंतर भावने योग्य हैं।

अब यहां षोडश भावना की षोडश जयमाला पढि महान् पुण्य उपार्जन करिये है। तिनही का अर्थकूं भावनिकी विशुद्धता अर अशुभ भावनिका नाश के अर्थि लिखिए है।

अथ समुच्चय जयमाला का अर्थ प्रथम ही लिखिये है—हे संसार–समुद्रतें तारने वाला, कुमतीकूं निवारण करने वाला, हे तीर्थंकर–रवलब्धिकूं धारण करने वाला, हे शिव! जो निर्वाण कारण, हे षोडशकारण! मैं तिहारे ताईं नमस्कार करके तेरा स्तवन करूं हूं अर मेरी शक्तिकूं प्रकट करूं हूं।

भावार्थ—षोडशकारण भावना जाकें होजाय सो नियमथकं तीर्थंकर हो जाय, संसार समुद्रकूं तिरै ही–ऐसा नियम है। बहुरि षोडशकारण भावना जाकें होय ताकें

कुगति नाहीं होय, केई तो विदेहक्षेत्रनिविषै गृहाचार में षोडशकारण भावना केवली के अथवा श्रुतकेवली के निकट भाय उसी भवमें तपकल्याण ज्ञानकल्याण निर्वाणकल्याण देवनिकरि पाय निर्वाणकूं प्राप्त होय हैं। अर केई पूर्व जन्म में केवली श्रुतकेवली के निकट भावना भाय सौधर्म स्वर्गकूं आदि लेय सर्वार्थसिद्धि पर्यंत अहमिंद्र उपजि करि फिर तीर्थंकर होय निर्वाण पावें हैं। कोई पूर्व जन्म में मिथ्यात्व के परिणाम में नरक का आयु बन्ध किया, फिर केवली श्रुतकेवली का शरण पाय सम्यक्त्व ग्रहणकरि षोडशकारण भावना भाय नरक जाय नरकतैं निकसि तीर्थंकर होय निर्वाणकूं प्राप्त होय हैं। पूर्व जन्म में षोडशकारण भावना करि तीर्थंकरप्रकृति बांधै हैं ताकैं पंच कल्याण की महिमा होय है। अर जो विदेहनिमें गृहस्थपना में तीर्थंकर प्रकृति बांधै सो उसही भव में तप ज्ञान निर्वाण तीन कल्याणनि में इन्द्रादिककरि पूजन पाय निर्वाणकूं प्राप्त होय हैं। केई विदेहक्षेत्रनि में मुनि के व्रत धरयां पाछैं केवली के निकट षोडशकारण भावना भाय उसी भव में तीर्थंकर होय ज्ञान, निर्वाण दोय कल्याण की पूजा को प्राप्त होय हैं। तप कल्याणक ताकैं पहले ही भया, तातैं नाहीं होय है। जाकै तीर्थङ्कर प्रकृति का बंध होय जाय सो भवनत्रिक देवनि में, अन्य मनुष्य तिर्यञ्चनिमें, भोगभूमि में, स्त्री नपुंसक एकेन्द्रिय विकल-चतुष्कादि

पर्यायनि में नाहीं उपजै है, अर तीसरी पृथ्वीतें नीचे नाहीं उपजै है। याही तें षोडशकारण भावना कुगति का निवारण करने वाली है। बहुरि षोडशकारण भावना हुया पाछै तीजे भव निर्वाण होय ही, तातें शिव का कारण है। अर तीर्थङ्करत्व ऋद्धि षोडशकारणतें ही उपजै है तातें हे षोडशकारणभावना! मैं तुम्हें नमस्कारकरि थारो स्तवन करूं हूं।

हे भव्यजीवो! इस दुर्लभ मनुष्य जन्म में पच्चीस दोषरहित दर्शनविशुद्धता नाम भावना भावहु। सम्यग्दर्शन के नष्ट करने वाले दोषनिकूं त्यागना सोही सम्यग्दर्शन की उज्ज्वलता है। तीन मूढता, अष्ट मद, छह अनायतन शंकादि अष्ट दोष ये सत्यार्थ श्रद्धानकूं मलीन करने वाले पच्चीस दोष हैं, तिनका दूरहं तें त्याग करो। बहुरि चार प्रकार का विनय जैसे भगवान् वा परमागम में कह्या तैसें दर्शनविनय, ज्ञानविनय, चारित्रविनय, उपचारविनय, ये चार प्रकार विनय जिन शासन का मूल भगवान् जिनेंद्र कह्या है। जहां चार प्रकार विनय नाहीं है तहां जिनेन्द्र-धर्म की प्रवृत्ति ही नाहीं। तातें जिनशासन का मूल विनय रूप ही रहना योग्य है। बहुरि अतीचाररहित शीलकूं पालहु। शीलकूं मलीन नाहीं करना सो उज्ज्वलशील मोक्ष के मार्ग में बड़ा सहाई है। जाके उज्ज्वल शील है ताके इन्द्रिय विषय कषाय परिग्रहादिक मोक्ष मार्ग में विघ्न नाहीं

कर सके हैं। इस दुर्लभ मनुष्य जन्म विषैं क्षण-क्षण में ज्ञानोपयोग रूप ही रहो, सम्यग्ज्ञान बिना एक क्षण हू व्यतीत मत करो, अन्य जे संकल्प-विकल्प संसार में डुबोवने वाले हैं तिनका दूरहीतैं परित्याग करो। बहुरि धर्मानुराग करि संसार-देह भोगनितैं विरागता रूप संवेग भावना मनके माहीं चिंतवन करते रहो। जातैं समस्तविषयनि में अनुराग का अभाव होय, धर्म में अर धर्म का फल में अनुराग रूप प्रवर्तन दृढ़ होय। बहुरि अंतरंग में आत्मा के घातक लोभादि के चार कषायनिका अभाव करि अपनी शक्तिप्रमाण सुपात्रनि के रत्नत्रयगुण में अनुराग करि आहारादिक चार प्रकार का दान में प्रवृत्ति करो। बहुरि दोय प्रकार अंतरंग बहिरंग परिग्रह में आसक्तता छांडि समस्त विषयनि की इच्छा का अभावकरि अतिशयकरि दुर्धर तपकूं शक्ति प्रमाण अंगीकार करो। बहुरि चित्तके विषै रागादिक दोषनिका निराकरण करि परम वीतरागता रूप साधुसमाधि धारण करो। बहुरि संसार के दुःख आपदा का निराकरण करने वाला वैयावृत्य दश प्रकार करहू। बहुरि अरहंत के गुणनि में अनुराग रूप भक्तिकूं धारण करता अरहंत के नामादिक का ध्यान करि अरहंत भक्तिकूं धारण करो। बहुरि पंच प्रकार आचारकूं आप आचरण करावे अर दीक्षा शिक्षा देने में निपुण, धर्म के स्तम्भ, ऐसे आचार्य परमेष्ठी के गुणनि में अनुराग

करना सो आचार्य भक्ति है। बहुरि ज्ञान में प्रवृत्ति कराने वाले निरन्तर सम्यग्ज्ञान का पठन आप करैं अन्य शिष्यनिकूं पढ़ावने में उद्यमी, चारि अनुयोग-विद्या के पारगामी वा अंग-पूर्वादि श्रुत के धारक उपाध्याय परमेष्ठी की बहुभक्ति धारण करना सो बहुश्रुत भक्ति नाम भावना है।

बहुरि जिनशासन का पुष्ट करने वाला अर संशयादिक अंधकार दूर करने कूं सूर्य समान जो भगवान का अनेकान्त रूप आगम ताके पठन में, श्रवण में, प्रवर्तन में चिंतवन में, भक्ति करि प्रवर्तन करना सो प्रवचन भक्ति भावना भावहु। बहुरि अवश्य करने योग्य षट् आवश्यक हैं ते अशुभ कर्म के आस्रव कूं रोकि महान् निर्जरा करने वाले हैं, अशरणनिकूं शरण हैं। ऐसे आवश्यकनिकूं एकाग्र-चित्तकरि धारहु, इनकी भावना निरन्तर भावहु। बहुरि जिनमार्ग की प्रभावना में नित्य प्रवर्तन करो। जिनमार्ग की प्रभावना धन्य पुरुषनिकरि प्रवर्ते है। अनेक पुरुषनिकी वीतरागधर्म में प्रवृत्ति अर कुमार्ग का अभाव प्रभावना करके ही होय है। बहुरि धर्म में, धर्मात्मा पुरुषनि में तथा धर्म के आयतन में; परमागम के अनेकान्त रूप वाक्यनि में परमप्रीति करना सो वात्सल्य भावना है। यो वात्सल्य अंग है सो समस्त अंगनि में प्रधान है, दुर्द्धर मोह तथा मान का नाश करने वाला है, ऐसे निर्वाण के सुखकी देने-वाली ये षोडशकारण भावनानिकूं जो भव्य स्थिरचित्तकरि

भावै है चित्त करै है, जाकै आत्मा में रुचि जाय है सो समस्त जीवनिकै हितकर तीर्थंकरत्व पाय पंचमगति जो निर्वाण ताकौ प्राप्त होय है। इनि षोडशकारण की समुदाय रूप भावना वर्णन करी।

दर्शनविशुद्धि भावना

अब दर्शनविशुद्धि नामा प्रथम अंगकी भावना वर्णन करिये है—हे भव्यजीव ! जो ये मनुष्य जन्म पाय पाया है सुकृत किया चाहौ हो तो सम्यग्दर्शनकी विशुद्धता करहु। यो सम्यग्दर्शन समस्त धर्मका मूल है। सम्यक्त्व बिना श्रावकधर्म नाहीं होय, मुनिधर्म नाहीं होय। सम्यग्दर्शन बिना ज्ञान है सो कुज्ञान है, चारित्र कुचारित्र है, तप है सो कुतप है। सम्यक्त्व बिना ये जीव अनन्तानन्त काल [illegible] है, अर यो चतुर्गति संसारपरिभ्रमणका [illegible] है [illegible] छूट्या चाहो हो अर अनन्त [illegible] सुख चाहौ हो तो अन्य समस्त [illegible] हैं तिनकूं छांडि, सम्यग्दर्शन

निकूं परम शरण है, ऐसी दर्शनविशुद्धिता नाम भावना भावहु। जैसें स्वपरद्रव्यका भेदज्ञान उज्ज्वल होय तैसें यत्न करहू। यो जीव अनादिकालतें मिथ्यात्वनाम कर्म के वशि होय आपका स्वरूपकी अर पर की पहिचान ही नाहीं करी, जैसे पर्यायकर्म के उदयतैं पर्याय पावै तैसी पर्यायकूं ही अपना स्वरूप जानता, अपना सत्यार्थरूप का ज्ञान में अन्ध हो, आपके स्वरूप तैं भ्रष्ट हुआ, चतुर्गति में भ्रमण करै है, देव कुदेवकूं जानै नाहीं, धर्म कुधर्मकूं जानै नाहीं, सुगुरु कुगुरुकूं जानै नाहीं। बहुरि पुण्यका पापका, इस लोकका परलोकका, त्यागने योग्य ग्रहण करने योग्य भक्ष्य–अभक्ष्य का, सत्संगका, कुसंगका, शास्त्रका कुशास्त्र का विचार रहित कर्मका उदय के रस में एक रूप भया, अपना हित अहितकूं नाहीं पहिचानता, परद्रव्यनि में लालसा रूप होय, सदाकाल क्लेशित होय रह्या है। कोऊ अकस्मात् काललब्धि के प्रभावतैं उत्तमकुलादिक में जिनेन्द्रधर्म पाया है। यातैं वीतरागसर्वज्ञका अनेकांत रूप परमागम के प्रसादतैं प्रमाण-नय-निक्षेपनितैं निर्णय करि, परीक्षा का प्रधानी होय, वीतरागी सम्यग्ज्ञानी गुरुनि के प्रसादतैं ऐसा निश्चय भया जो एक जानने वाला ज्ञायक रूप अविनाशी, अखंड, चेतनालक्षण, देहादिक समस्त परद्रव्यनितैं भिन्न, मैं आत्मा हूँ, देह जाति कुल रूप नाम इत्यादिक मोतैं अत्यन्त भिन्न हैं, अर राग द्वेष काम क्रोध

मद्लोभादिक कर्म के उदयतैं उपजे मेरे ज्ञायकस्वभाव में विकार हैं । जैसैं स्फटिकमणि तो आप स्वच्छ श्वेत स्वभाव है तिसमें डाक के संसर्गतैं काला पीला हरया लाल अनेक रङ्गरूप के दीसै, तैसैं मैं आत्मा स्वच्छ ज्ञायक भाव हूं, निर्विकार टंकोत्कीर्ण हूं, मोहकर्मजनित राग-द्वेषादिक यामें झलकैं हैं ते मेरे रूप नाहीं, पर हैं । ऐसै तो अपने स्वरूप का निश्चय हुवा ।

बहुरि सर्वज्ञ वीतराग परम हितोपदेशक, अर क्षुधा तृषा जन्म जरा मरण रोग शोक भय विस्मय राग द्वेष निद्रा स्वेद मद मोह चिंता खेद अरति इन अष्टादश दोषनिका अत्यन्त अभाव जाकै भया अर अनन्तज्ञान अनन्तदर्शन अनन्तवीर्य अनन्तसुख इत्यादिक अनन्त आत्मीक अविनाशी गुण जाकै प्रगट भए, सो ही आप्त हमारे वंदन स्तवन पूजन करने योग्य हैं । अन्य कामी क्रोधी लोभी मोही स्त्रीनि में आसक्त, शस्त्रादिक ग्रहण किये, कर्म के अधीन इन्द्रिय ज्ञानके धारक, सर्वज्ञतारहित हैं सो मेरे वन्दन स्तवन पूजने योग्य नाहीं । जो चोरनि में शिरोमणि अर जारनि में शिरोमणि हैं सो कैसैं आराधने योग्य होय ? बहुरि सर्वज्ञ वीतरागका उपदेश्या अर प्रत्यक्ष अनुमानादिकरि जामें सर्वथा बाधा नाहीं आवै अर समस्त छहकाय के जीवनिकी हिंसारहित धर्मका उपदेशक, आत्माका उद्धारक, अनेकांतरूप वस्तुकूं साक्षात्

प्रगट करने वाला ही आगम है सो पढ़ने पढ़ाने, श्रवण करने श्रद्धान करने वंदने योग्य हैं। अर जे रागी द्वेषीनिकरि प्ररूपण किये, अर विषयानुराग अर कषाय के बधावनेवारे, जिनमें हिंसाके करनेका उपदेश है ऐसे प्रत्यक्ष अनुमानकरि बाधित, एकांतरूप शास्त्र श्रवण पढ़ने योग्य नाहीं, वन्दनायोग्य नाहीं है। बहुरि विषयनिकी वांछाका अर कषायका अर आरम्भपरिग्रहका जाके अत्यन्त अभाव भया, केवल आत्मा की उज्ज्वलता करने में उद्यमी, ध्यान स्वाध्याय में अत्यन्त लीन, स्वाधीन, कर्मबंधजनित दुःख सुखमें साम्यभावके धारक, जीवन मरण, लाभ, अलाभ, स्तवन निंदने में रागद्वेषरहित, उपसर्गपरीषहनिके सहने में अकम्प धैर्यके धारक, परम निर्ग्रन्थ दिगम्बर गुरु ही वंदन स्तवन करने योग्य हैं। अन्य आरम्भी कषायी विषयानुरागी कुगुरु कदाचित् स्तवन वन्दन करने योग्य नाहीं। बहुरि जीवदया ही धर्म है। हिंसा कदाचित् धर्म नाहीं। जो कदाचित् सूर्य का उदय पश्चिमदिशा में होजाय, अर अग्नि शीतल होजाय, अर सर्पका मुखमें अमृत होजाय, अर मेरु चलि जाय अर पृथ्वी उलट पलट होजाय तो हू हिंसामें तो धर्म कदाचित् नाहीं होय। ऐसा दृढ़ सिद्धान्त सम्यग्दृष्टिके होय है। जाके अपने आत्माके अनुभवमें अर सर्वज्ञ वीतरागरूप आप्तके स्वरूप में अर निर्ग्रन्थ विषयकषायरहित गुरुमें अर अनेकान्तस्वरूप आगममें अर दयारूप धर्ममें शङ्का

का अभाव सो निःशंकित अंग है। सम्यग्दृष्टि यामें कदाचित् शङ्का नाहीं करै है।

बहुरि सम्यग्दृष्टि है सो धर्मसेवनकरि विषयनिकी वांछा नाहीं करै है, जातैं सम्यग्दृष्टिकूं इन्द्र अहमिन्द्रलोक के विषै हू महान वेदनारूप विनाशीक पापका बीज दीखै है, अर धर्मका फल अनन्त अविनाशी स्वाधीन सुखकरि पूर्ण मोक्ष दीखै है। तातैं जैसें बहुमूल्य रत्न छांडि कांचखण्डकूं जौंहरी नाहीं ग्रहण करै है तैसें जाकूं आंना आत्मीक अविनाशी बाधारहित सुख दीख्या सो झूंठा बाधासहित विषयनिका सुखमें कैसें वांछा करै? तातैं सम्यग्दृष्टि वांछारहित ही होय है। अर जो अव्रती सम्यग्दृष्टीके वर्तमानकालमें आजीविकादिनिमें तथा स्थानादिकपरिग्रहमें वेदनाके अभाव में जो वांछा होय है सो वर्तमानकाल की वेदना सहने की असामर्थ्यतैं वेदनाका इलाजमात्र चाहै है। जैसे रोगी कड़वी औषधितैं अति विरक्त होय है तो हू वेदनाका दुःख नाहीं सह्या जाय, तातैं कड़वी औषधि वमन विरेचनादिक का कारणहू ग्रहण करै है, दुर्गन्ध तैलादिकहू लेगावै है, अन्तरङ्गमें औषधितैं अनुराग नाहीं है, तैसें सम्यग्दृष्टि निर्वाछक है तो हू वर्तमानके दुःख वेदनेकूं योग्य न्यायके विषयनिकी वांछा करै है। अर जिनमें प्रत्याख्यानअप्रत्याख्यानावरणकषायका अभाव भया ते अव्रतामें ग्रंड होय तो हू विषयवांछा नाहीं करै हैं। यातैं सम्यग्दृष्टिके

निःकांक्षित गुण होय ही है।

बहुरि सम्यग्दृष्टि अशुभ कर्मके उदयतैं प्राप्त भई अशुभ सामग्री तिसमें ग्लानि नाहीं करै, परिणाम नाहीं बिगाड़ै है, मैं पूर्व जैसा कर्म बांध्या तैसा भोजन, पान, स्त्री पुत्र दरिद्र संपदा आपदाकूं प्राप्त भया हूं तथा अन्य जिनीकूं रोगी दरिद्री हीन नीच मलीन देखि परिणाम नाहीं बिगाड़ै है, पापकी सामग्री जानि कलुषता नाहीं करै है, तथा मलमूत्र कर्दमादि द्रव्यकूं देखि अर भयङ्कर श्मशान वनादि क्षेत्रकूं देखि, भयरूप दुःखदायी कालकूं देखि, दुष्टपना कड़वापना इत्यादिक वस्तुका स्वभावकूं देखि अपना निर्विचिकित्सित अंग सम्यग्दृष्टिके होय ही है।

बहुरि खोटे शास्त्रनितैं तथा व्यन्तरादिक देवनिकृत विक्रियातैं तथा मणि मन्त्र औषधादिकनिके प्रभावतैं अनेक वस्तुनिके विपरीत स्वभाव देखि सत्यार्थ धर्मतैं चलायमान नाहीं होना सो सम्यग्दर्शनका अमूढदृष्टि गुण है, सो सम्यग्दृष्टिके होय ही है।

बहुरि सम्यग्दृष्टि अन्य जीवनिके अज्ञानतैं अशक्ततातैं लगे हुए दोष देखि आच्छादन करै है। ये संसारी जीव ज्ञानावरण दर्शनावरण मोहनीय कर्मके वशि होय अपना स्वभाव भूल रहे हैं, कर्मके आधीन असत्य परधनहरण कुशीलादि पापनि में प्रवृत्ति करै है। जे पापनितैं दूर वर्तै हैं ते धन्य हैं। बहुरि कोऊ धर्मात्मा पुरुष (नामी पुरुष)

पापके उदयतैं चूकि जाय ताकूं देखि ऐसा विचारै:—जो यो दोष प्रगट होयगी तो अन्य धर्मात्मा अर जिनधर्म की बड़ी निन्दा होयगी, या जानि दोष आच्छादन करै, अर अपना गुण होय ताकी प्रशंसा का इच्छुक नाहीं होय है सो यो उपगूहनगुण सम्यक्त्वको है। इन गुणनितैं पवित्र उज्ज्वल दर्शन विशुद्धितानाम भावना होय है।

बहुरि जो धर्मसहित पुरुषका परिणाम कदाचित् रोग की वेदना करि धर्मतैं चलि जाय तथा दारिद्र करि चलि जाय तथा उपसर्ग परिषहनिकरि चलि जाय तथा असहायताकरि तथा आहारपानका निरोधकरि परिणाम धर्मतैं शिथिल होजाय ताकूं उपदेशकरि धर्म में स्थम्भन करै। भो ज्ञानी! भो धर्मके धारक! तुम सचेत होहु, कैसे कायरता धारणकरि धर्म में शिथिल भये हो, जो रोगकी वेदनातैं धर्मतैं चिगो हो, कैसे भूलो हो, यो असातावेदनीकर्म अपना अवसर पाय उदयमें आय गया है अब जो कायर होय दीनताकरि रुदनविलापादि करते भोगोगे तो कर्म नाहीं छांडेगा। कर्मके दया नाहीं होय है। और धीरपनातैं भोगोगे तो कर्म नाहीं छांडेगा, कोऊ देव दानव मन्त्र तन्त्र औषधादिक तथा स्त्री, पुत्र, मित्र, बांधव सेवक सुभटादिक उदयमें आया कर्म हरनेकूं समर्थ है नाहीं, यो तुम अच्छी तरह समझो हो। अब इस वेदना में कायर होय अपना धर्म अर यश अर परलोक इनकूं कैसे बिगाडो हो।

अर इनकूं त्रिगाडि स्वछन्द चेष्टा विलापादि करनेतैं वेदना नाहीं घटै है। ज्यों ज्यों कायर होवेगा त्यों त्यों वेदना दुःख बढैगा। तातैं अब साहस धारण करि परम-धर्मका शरण ग्रहण करो। संसारमें नरकके तथा तिर्यञ्चनिके क्षुधा तृषा रोग सन्ताप ताडन मारन शीत उष्णादिक घोर दुःख असंख्यातकाल पर्यन्त अनेक बार अनन्तभव धारण करि भोगे। ये तुम्हारे कहा दुःख हैं, अल्प कालमें निर्जरैगा। अर रोग वेदना देहकूं मारैगा, तुम्हारा चेतनस्वरूप आत्माकूं नाहीं मारैगा। अर देहका मरना अवश्य होयगा, जो देह धारण किया ताकै अवश्यंभावी मरण है। सो अब सचेत होहू यो कर्म का जीतवाको अवसर है। अब भगवान् पंच परमेष्ठी का शरण ग्रहणकरि अपना अजर अमर अखंड ज्ञाता दृष्टा स्वरूप का ग्रहण करो। ऐसा अवसर फेरि मिलना दुर्लभ है। इत्यादिक धर्मका उपदेश देय धर्म में दृढ करना अर अनित्य अशरणादि भावना का ग्रहण शीघ्र करावना, त्याग व्रतादिक छांडि दिये होय तो फिर करावना तथा शरीरका मर्दनादिक करि दुःख दूरि करना अर कोऊ टहल करनेवाला नाहीं होय तो आप टहल करना, अन्य साधर्मीनिका मेल मिला देना, आहार पान औषधादिकरि स्थितिकरण करना तथा मलमूत्र कफादिक होय तो धोवना पूंछना इत्यादि करि स्थिर करना, दारिद्रकरि चलायमान होय तिनका भोजन-

पानादिक करि, आजीविकादिक लगाय देने करि, उपसर्ग परीषहादिक दूर कने करि सत्यार्थ धर्म में स्थापन करना सो स्थितिकरण अंग सम्यग्दृष्टि के होय है।

बहुरि वात्सल्यनामगुण सम्यग्दृष्टिके होय है। संसारी जीवनिकी प्रीति तो अपने स्त्रीपुत्रादिकनिमें तथा इन्द्रियनि के विषयभोगनि में, धनके उपार्जनमें बहुत रहे है। जातैं स्त्रीपुत्रधन परिग्रह विषयादिकनिकूं संसारपरिभ्रमण के कारण जानि, अंतरंगमें विरागता धारण करि, जाकी धर्मा त्मामें, रत्नत्रयके धारक मुनि अर्जिका श्रावक श्राविकामें वा धर्मके आयतननिमें अत्यन्त प्रीति होय, ताकैं सम्यग्दर्शन का वात्सल्यअंग होय है।

बहुरि जो अपने मनकरि वचनकरि कायकरि धनकरि दानकरि व्रतकरि तपकरि भक्तिकरि रत्नत्रय का भाव प्रकट करै सो मार्ग प्रभावना अङ्ग है। याका विशेष प्रभावना अङ्ग की भावना में वर्णन करियेगा। ऐसैं सम्य-ग्दर्शन के अष्टअङ्ग धारण करनेतैं इन गुणनिका प्रतिपक्षी शंका-कांक्षादिक दोषनिका अभावकरि दर्शनविशुद्धता होय है। बहुरि लोकमूढता देवमूढता गुरुमूढताका परित्या-गनिकूं छांडि श्रद्धानकूं उज्ज्वल करना।

अत्र लोकमूढताका स्वरूप ऐसा है:-जोमृतकनिका हाड नखादि गंगामें पहुंचाने में मुक्ति भई मानै है तथा गंगाजलकूं उत्तम मानना, तथा गंगास्नानमें, अन्य नदिके

स्नान में, नदी की लहर लेने धर्म में मानना तथा मृतक भर्ताके साथ जीवती स्त्री तथा दासी अग्निमें दग्ध होजाय ताकूं सती मानि पूजना, मरयाकूं पितर मानि पूजना, पितरनिकूं पातडी में स्थापन करि पहराना तथ सूर्यचन्द्र मंगलादिक ग्रहनिकूं सुवर्ण रूपाका बनाय गलेमें पहराना तथा ग्रहनिका दोष दूर करनेकूं दान देना, संक्रांति व्यतिपात सोमोती अमावसि मानि दान करना, सूर्य-चन्द्रमाका ग्रहणका निमित्ततैं स्नान करना, डाबकूं शुद्ध मानना, हस्तीके दंतनिकूं शुद्ध मानना, कूवा पूजन, सूर्य-चन्द्रमा कूं अर्घ देना, देहली पूजना, मूशलकूं पूजना, छींककूं पूजना, दीपककी जोतिकूं पूजना, देवता की बोलारी बोलना, जड़ूला चोटी राखना, देवता की भेट के करारतैं अपना सन्तानादिककूं जीवित मानना, सन्तानकूं देवता का दिया मानना तथा अपने लाभ वास्ते तथा कार्यसिद्धि वास्तैं ऐसी बीनती करै-जो मेरे ऐसा लाभ होजाय तथा सन्तान का रोग मिटिजाय तथा सन्तान होजाय या वैरीका नाश होजाय तो मैं आपके छत्र चढाऊँ, इतना धन भेट करूं, ऐसा करार करै है, देवताकूं सौंक (रिश्वत) देय कार्यकी सिद्धि के वास्ते वांछे है। तथा रातजगा करना, कुलदेवकूं पूजना, शीतलाकूं पूजना, लक्ष्मीकूं पूजना, सोना रूपाकूं पूजना, पशुनिकूं पूजना, अन्नकूं जलकूं पूजना, शास्त्रकूं ध्वजकूं पूजना, अग्निदेव मानि पूजना सो लोकमूढता।

है मिथ्यादर्शन का प्रभावतैं श्रद्धान के विपरीतपना है सो त्यागने योग्य है।

बहुरि देव-कुदेव का विचाररहित होय कामी क्रोधी परिग्रहीनि में ईश्वरपना की बुद्धि करना, जो यह भगवान् परमेश्वर हैं, समस्त रचना याकी है, ये ही कर्त्ता हैं, हर्त्ता हैं, जो कुछ होय है सो ईश्वर को कियो है, समस्त आछी बुरी लोकनिमूं ईश्वर करावे है, ईश्वर का किया बिना कछू ही नाहीं होय है, सब ईश्वर की इच्छाके आधीन है, शुभकर्म अशुभकर्म ईश्वर की प्रेरणा बिना नाहीं होय है, इत्यादिक परिणाम सम्यग्दर्शन के अभावकरि होय सो देवमूढता है।

बहुरि पाखण्डी हीन-आचार धारक तथा परिग्रही, लोभी, विषयनिका लोलुपीनिकूं करामाती मानना, बाका वचन सिद्ध मानना तथा ये प्रसन्न हो जाय तो हमारा वांछित सिद्ध हो जाय, ये तपस्वी हैं, पूज्य हैं, महापुरुष हैं, पुराण हैं इत्यादिक विपरीत श्रद्धान करै सो गुरुमूढता है। तातैं जिनके परिणामनितैं इन तीन मूढताका लेशमात्रहू नाहीं होय ताकैं दर्शनकी विशुद्धता होय है। बहुरि छह अनायतनका त्यागकरि दर्शनविशुद्धता होय है। कुदेव कुगुरु कुशास्त्र अर इनके सेवन करने वाले ये धर्म के आयतन कहिये स्थान नाहीं। तातैं ये अनायतन हैं।

भावार्थः—जो रागी द्वेषी कामी क्रोधी परिग्रही

मिथ्यात्वकरि सहित हैं तिनमें सम्यक् धर्म नाहीं पाईये। तातैं कुदेव हैं ते अनायतन हैं। बहुरि पंचइन्द्रियनि के विषयनिके लोलुपी, परिग्रह के धारी, आरम्भ करनेवाले ऐसे भेषधारी ते गुरु नाहीं, धर्महीन हैं। तातैं अनायतन हैं। बहुरि हिंसा के आरम्भ की प्रेरणा करनेवाला, राग-द्वेषकामादिक दोषनिका बधावनेवाला, सर्वथा एकान्तक प्ररूपक शास्त्र हैं ते कुशास्त्र धर्मरहित हैं। तातैं अनायतन हैं। बहुरि देवी दिहाडी क्षेत्रपालादिक देवकूं वंदने वाले अनायतन हैं। बहुरि कुगुरुनिके सेवक हैं अविवेकतैं धर्मतैं रहित हैं ते अनायतन हैं। बहुरि मिथ्याशास्त्रके पढनेवाले अर इनकी सेवा भक्ति करनेवाले एकांती धर्मका स्थान नाहीं तातैं अनायतन हैं। ऐसे कुदेव कुगुरु कुशास्त्र अर इन की सेवा भक्ति करनेवाले इन छहूनिमें सम्यक्धर्म नाहीं है। ऐसा दृढ श्रद्धानकरि दर्शनविशुद्धता होय है।

बहुरि जातिमद, कुलमद, ऐश्वर्यमद, शासनका मद, तप का मद, बल का मद, विज्ञानमद इन अष्ट मदनि का जाकै अत्यन्त अभाव होय है ताकै दर्शन विशुद्धता होय। सम्यग्दृष्टि के सांचा विचार ऐसा है:—हे आत्मन्! या उच्च जाति है सो तुम्हारा स्वभाव नाहीं, यह तो कर्म का परिणमन है, परकृत है—विनाशीक है, कर्मनि के आधीन है। संसार में अनेक बार अनेक जाति पाई हैं। माता की पक्षकूं जाति कहिये है। जेते अनेक बार चांडाली के

तथा भीलणी के म्लेच्छणी के चमारी के ... के नायणि के डूमणि के नटनि के वेश्या के दासी के कलाली के धीवरी इत्यादि मनुष्यनि के गर्भ में उपज्या है, तथा सूकरी कूकरी गर्दभी स्यालणी बागली इत्यादि तिर्यंचनि के गर्भ में अनंतवार उपजि उपजि मरया है। अनन्तवार नीच जाति पावे तब एक बार उच्चजाति ... ऐसे उच्च जाति भी अनन्तवार पाई तोहू संसार ... ही कीया। अर ऐसे ही पिता की पक्ष ... नीचा अनन्तवार प्राप्त भया। संसारमें जातिका ... मद कैसे करिये है? स्वर्गका महर्द्धिकदेव ... आय उपजे है तथा स्वानादिक निन्द्य ... तथा उत्तमकुलका धारक होय सो चांडाल ... तातें जातिकुल में अहंकार करना ... हे आत्मन्! तुम्हारा जातिकुल तो ... तुम आपा भूलि माताका रुधिर ... जातिकुल में मिथ्या आपा धरि फेर ... दवास मति करो। वीतरागका उपदेश ... इस देह की जातिकू [illegible] संयम शील ... सफल करो। जो मैं उत्तम जातिकुल ... हिंसा असत्य परधनहरण कुशील ... अयोग्य आचरण कैसे करूं? नाहीं ... करना योग्य है। सम्यग्दृष्टि ...

कदाचित् आत्मबुद्धि नाहीं होय है।

बहुरि ऐश्वर्य पाय ताका मद कैसे करिये। यो ऐश्वर्य तौ आत्मा भुलाय बहु आरम्भ रागद्वेषादिकमें प्रवर्तिकरि चतुर्गतिमें परिभ्रमण का कारण है। निर्ग्रन्थपना तीन लोक में धारने योग्य है, पूज्य है। अर यो ऐश्वर्य क्षणभंगुर है, बड़े २ इन्द्र अहमिंद्रनिका पतनसहित है। बलभद्र नारायणनिका ऐश्वर्य क्षणमात्रमें नष्ट हो गया, अन्य जीवनिका ऐश्वर्य केताक है? ऐसैं जानि, ऐश्वर्य दोय दिन पाया है तो दुःखित जीवनिका उपकार करो, विनयवान होय दान देहु। परमात्मस्वरूप अपना ऐश्वर्य जानि इस कर्मकृत ऐश्वर्य में विरक्त होना योग्य है। बहुरि रूपका मद मति करो। यो विनाशीक पुद्गलको रूप आत्माका स्वरूप नाहीं, विनाशीक है, क्षण-क्षणमें नष्ट होय है। इस रूपकूं रोग वियोग दरिद्र जरा महाकुरूप करैगा। ऐसा हाडचामका रूपमें रागी होय मद करना बड़ा अनर्थ है। इस आत्मा का रूप तो केवलज्ञान है जिसमें लोक अलोक सर्व प्रतिबिंबित होय है। तातैं चामडा का रूप में आपा छांडि; अपना अविनाशी ज्ञानस्वरूपमें आपा धारहु। बहुरि श्रुतका गर्वकूं छांडहु। आत्मज्ञानरहितका श्रुत निष्फल है, जातैं एकादश अंगका ज्ञान सहित होय करकेहू अभव्य संसारही में परिभ्रमण करै है। सम्यग्दर्शन विना अनेक छंद अलंकार काव्य कोषादिक पढना, विपरीत

धर्ममें अभिमान लोभमें प्रवर्तन कराय संसाररूप अंधकूप में डुबोवने के अर्थिज्ञानहू। और इस इन्द्रियजनित ज्ञान का कहा गर्व है? एक क्षण में वातपित्त कफादिक के घटने वधने तैं चलायमान होजाय है। अर इन्द्रियजनित ज्ञान तो इन्द्रियनिका विनाशकी साथ ही विनशैगा अर मिथ्याज्ञान सो ज्यों बंधैगा त्यों खोटे काव्य, खोटी टीकादिकनि की रचनामें प्रवर्तन कराय अनेक जीवनिकूं दुराचार में प्रवर्तन कराय डुबोय देगा। तातैं श्रुतका मद छांडहू, ज्ञान पाय आत्मविशुद्धता करहू, ज्ञान पाय अज्ञानीकैसे आचरणकरि संसारमें भ्रमण करना योग्य नाहीं है।

बहुरि सम्यक्त्व विना मिथ्यादृष्टि का तप निष्फल है। तपको मद करो हो—जो मैं बड़ा तपस्वी हूं सोमदके प्रभावतैं बुद्धि नष्ट करिकैं यो तप दुर्गति में परिभ्रमण करावेगा। तातैं तपका गर्व करना महा अनर्थ जानि भव्यनिकूं तपका गर्व करना योग्य नाहीं है। बहुरि जिस बलकरि कर्मरूप वैरीकूं जीतिये तथा काम क्रोध लोभकूं जीतिये, सो बल तो प्रशंसा योग्य है और देहका बल, यौवन का बल, ऐश्वर्यका बल पाय अन्य निर्बल अनाथ जीवनिकूं मारि लेना, धन खोसि लेना, जमीं जीविका खोसि लेना, कुशीलसेवन करना दुराचार में प्रवर्तन करावना सो बल तो नरक के घोर दुःख असंख्यातकाल भोगाय; तिर्यंचगति में मारणताडन लादनकरि तथा दुर्वचन तथा क्षुधा तृषादिकनिके दुःख अनेक पर्यायनिमें भुगताय, एकेन्द्रि-

यनिमें समस्तबलरहित असमर्थ करैगा। तातैं मलेका मद छांडि क्षमा ग्रहण करि उत्तमतपमें प्रवर्तन करना योग्य है।

बहुरि जो विज्ञान कहिये अनेक हस्तकला, अनेक वचनकला अनेक मनके विकल्प जिनकरि यो आतमा चतुर्गतिरूप संसार में परिभ्रमणकरि दुःख भोगै है, ते समस्त कुज्ञान हैं। इस संसार में खोटीकला चतुरताका बड़ा गर्व है। जो हमारा सामर्थ्य ऐसा है तो सांचेकूं झूठ करि देवैं, झूठेकूं सांचा कर देवैं, कलंकरहितकूं कलंकसहित करि देवैं, शीलवन्तकूं दूषित करिदेवैं, अदण्डनिकूं दण्ड देने योग्य करि देवैं, बहुत दिननिका संचय किया द्रव्यकूं कढ़ा लेवैं तथा धर्म छुड़ाय अन्यथा श्रद्धान कराय देवैं तथा प्राणीनिके वशीकरण तथा अनेक जीवनिका मारण तथा अनेक जलमें गमन करनेके, स्थलमें गमन करनेके, आकाशमें गमन करनेके, अनेक यन्त्र बनाय देवैं, इत्यादिक कलाचातुर्य है ते सब कुज्ञान हैं। याका गर्व नरकके घोर दुःखका कारण है। कलाचातुर्य तो सम्यक्त्व सो है। जातैं अपना आत्माकूं विषयकषायके उलझावतै सुलझावना तथा लोकनिकूं हिंसारहित सत्यमार्गमें प्रवर्तावना है, ऐसे सत्यार्थवस्तुका स्वरूप समझि, जाति, कुल, धन ऐश्वर्य, रूप, विज्ञानादिककूं कर्मके अधीन जानि इनका मद छांडि दर्शनविशुद्धता करो। ऐसे तीन मूढ़ता अर आठ शङ्कादिकदोष, अर षट् अनायतन, अर अष्ट मद ऐसे

पच्चीस दोषका परिहार करि सम्यग्दर्शनकी उज्ज्वलता होय है। ऐसे जानि दर्शनविशुद्ध भावना ही निरन्तर करो अर याहीकूं ध्यानगोचर करि स्तुति सहित उज्ज्वल अर्घ उतारण करें हैं सो मुक्तिस्त्रीसूं संबन्ध करे है। ऐसे दर्शनविशुद्धता नाम प्रथम भावना वर्णन करी ॥१॥

(२) विनयसंपन्नता भावना

अब आगे विनयसंपन्नता नाम दूजी भावना कहिये है। सो विनय पंच प्रकार कह्या है—दर्शनविनय, ज्ञानविनय, चारित्रविनय, तपविनय, उपचारविनय। तहां जो अपने श्रद्धान के शङ्कादिक दोष नाहीं लगावना, तथा सम्यग्दर्शन की विशुद्धताकरि ही अपना जन्म सफल मानना, सम्यग्दर्शनके धारकनिमें प्रीति धारना, आत्मा अर परका भेदविज्ञान का अनुभव करना सो दर्शनविनय है। बहुरि सम्यग्ज्ञानके आराधनमें उद्यम करना, सम्यग्ज्ञानके धारकनिमें आदर करना तथा सम्यग्ज्ञान के कारण जे अंग पूर्व जिनसूत्र तिनके श्रवण पठनमें बहुत उत्साहसहित तथा वन्दना स्तवनपूर्वक बहुत आदरतें पढना सो ज्ञानविनय है। तथा ज्ञानके आराधक ज्ञानीजनों का तथा ज्ञानके पुस्तकनि का संयोग का बडा लाभ मानना, पुस्तकनि का स्तवन आदरादिक करना सो ज्ञान विनय है। बहुरि अपनी शक्तिप्रमाण चारित्र धारणमें हर्ष करना, दिनदिन

की उज्ज्वलता के अर्थि विषयकषायनिकूं घटावना तथा चारित्रके धारकनिके गुणनिमें अनुराग स्तवन आदर करना सो चारित्र विनय है। बहुरि इच्छाकूं रोकि मिले हुए विषयनिमें संतोष धारणकरि ध्यानस्वाध्यायमें उद्यमी होय, काम के जीतनेकूं अर इन्द्रियनि के विषयनि में प्रवृति रोकने कूं अनशनादिक तपमें उद्यम करना सो तपविनय है। बहुरि इन च्यारि आराधनाका उपदेशकरि मोक्षमार्गमें प्रवर्तन करावनेवाले तथा जिनके स्मरण करनेतैं परिणामनिका मल दूरि होय, विशुद्धता प्रगट हो जाय ऐसे पंच परमेष्ठी के नाम की स्थापना का विनय वंदना स्तवन करना सो उपचारविनय है। अन्य हू उपचारविनयका बहुत भेद है।

अभिमानकूं छांडि अष्टमदका अत्यन्त अभाव जाकै होय, कठोरता छूटि कोमलता जाकैं प्रगट होय ताकै नम्रपना प्रगट होय है। ताकै सत्यार्थ ऐसा विचार है-यो धन यौवन जीवन क्षणभंगुर है, कर्मके अधीन है, कोऊ जीव हमतैं क्लेशित मत होहु, सकल सम्बन्ध वियोगसहित है, इहां केते काल रहूंगा, समय-समय कालके सन्मुख अखंड गमन करूं हूं, कोऊ वस्तुका सम्बन्ध थिर नाहीं है, इहां विनय धर्म ही भगवान् मनुष्य जन्मका सार कह्या है, यो विनय संसाररूप वृक्षके दग्ध करनेकूं अग्नि है, यो विनय है सो त्रैलोक्यवर्ती जीवनिके मनकी उज्ज्वलता करने वाला

है, अर विनय है सो समस्त जिनशासनकी मूल है, विनयरहितके जिनेन्द्रकी शिक्षा ग्रहण नाहीं होय है। विनयरहित जीव समस्त दोषनिका पात्र है, विनय है सो मिथ्याश्रद्धानके छेदनेकूं मूल है, विनय बिना मनुष्यरूप चामड़ाको वृत्र मानरूप अग्नि करि भस्म होय है। अर मानकषाय करिके यहां ही घोर दुःख सहै है अर परलोक मैं निन्द्य जाति, कुलरूपबुद्धिहीन बलहीन उपजै है। जे अभिमानी यहां किंचित् वचनमात्र हू नाहीं सहै हैं ते तिर्यञ्चगतिमें नासिकामें मूंजका जेवड़ाका बन्धन, लादन, मारण, लात ठोकरांका पात, चामड़ाका मरमस्थानमें घात, पराधीन हुआ भोगै है, तथा चांडालनिके मलीन घरमें बन्धनतैं बन्ध रहै है जिन ऊपरि मलादि निंद्य वस्तु लादिये हैं। और इसलोकमें हू अभिमानीके समस्त लोक वैरी हो जाय हैं। अभिमानीकूं समस्त निंदैं हैं, महाअपयश प्रगट हो जाय है। समस्त लोग अभिमानीका पतन चाहै हैं। मानकषायतैं क्रोध प्रगट होय कपट विस्तारै, अतिलोभ करै दुर्वचननिमें प्रवर्तन करै है। लोकमें जेती अनीति है तितनी मानकषायतैं होय है। पर-धनहरणादिक हू अपने अभिमान पुष्ट करनेकूं करै है। यातैं इस जीवका बड़ा वैरी मानकषाय है। यातैं विनय गुणमें महान् आदरकरि अपना दोऊ लोक उज्ज्वल करो। सो विनय देवको, शास्त्रको, गुरुनिको मन वचन कायतैं प्रत्यक्ष करो

अर परोक्ष हू करो।

तहां देव जो भगवान अरहंत समवसरण विभूति सहित गंधकुटीके मध्य सिंहासन ऊपरि अंतरिक्ष विराजमान, चौंसठ चमरनिकरि वीज्यमान, छत्रत्रयादिक प्रातिहार्यनि करि विभूषित, कोटिसूर्यसमान उद्योतका धारक, परमौदारिक देहमें तिष्ठता, द्वादश सभाकरि सेवित, दिव्यध्वनिकरि अनेक जीवनिका उपकार करनेवाले अरहंतको चिंतवनकरि ध्यान करना सो मनकरि परोक्षविनय है। याका विनयपूर्वक स्तवन करना सो वचन करि परोक्ष विनय है। अंजुली जोडि मस्तक चढ़ाय नमस्कार करना सो कायकरि परोक्षविनय है। बहुरि जो जिनेन्द्र की प्रतिबिम्बकी परमशान्त मुद्राकूं प्रत्यक्ष नेत्रनितैं अवलोकनिकरि महा आनंदतें मनमें ध्यायकरि आपकूं कृतकृत्य मानना सो मनकरि प्रत्यक्षविनय है। जिनेन्द्र का प्रतिबिंब के सन्मुख होय स्तवन करना सो प्रत्यक्ष वचनविनय है। अंजली मस्तक चढाय वन्दना करना तथा भूमिमें अंजली सहित मस्तक गोडानिका स्पर्शनकरि नमस्कार करना सो कायकरि प्रत्यक्षविनय है। तथा सर्वज्ञ वीतराग परमात्मा जिनेन्द्रका नामका स्मरण, ध्यान, वन्दना, स्तवन करना सो समस्त परोक्षविनय है। ऐसे देवका विनय समस्त अशुभकर्मनिका नाश करनेवाला कह्या है।

बहुरि जो निर्ग्रन्थ वीतरागी मुनीश्वरनिकूं प्रत्यक्ष

देखि खडा होना, आनन्दसहित सन्मुख जाना, स्तवन करना, वन्दना करना, गुरुनिकूं आगैंकरि पाछैं चलना कदाचित् बराबर चलना होय तो गुरुनिके वाम तरफ चलना, गुरुनिकूं अपने दक्षिण भागमें करिकैं चलना बैठना, गुरुनिकूं विद्यमान होते आप उपदेश नाहीं करना, कोऊ प्रश्न करै तो गुरुनिके होते आप उत्तर नाहीं देना अर गुरुनिकी इच्छा होय तो गुरुनिकी इच्छानुकूल उत्तर देना, गुरुनिके होते उच्च आसन नाहीं बैठना, अर गुरु व्याख्यान उपदेशादिक करैं ताकूं अंजुलि जोडि बहुत आदरतैं ग्रहण करना, गुरुनिका गुणनिमें अनुराग करि आज्ञाके अनुकूल प्रवर्तन करना, अर गुरु दूर क्षेत्रमें होय तो वाँकी जो आज्ञा होय तैसैं वर्तन करना, दूरहीतैं गुरुनिका ध्यान स्तवन नमस्कारादि विनय करना सो गुरुनिका विनय है।

बहुरि शास्त्रका विनय करना, बडा आदरतैं पठन श्रवण करना, द्रव्य क्षेत्र काल भावकूं देखि व्याख्यानादि करना, शास्त्र का कह्या व्रत संयमादिक आपतैं नाहीं बनि सकैं तो आज्ञा का उल्लंघन नाहीं करना, सूत्रकी आज्ञा होय तिस प्रमाण ही कहना तथा जो सूत्रकी आज्ञा होय ताकूं एकाग्रचित्ततैं श्रवण करना, अन्य कथा नाहीं करना, आदरपूर्वक मौनतैं श्रवण करना, अर जो संशय होय तो संशय दूर करनेकूं विनय पूर्वक अल्प अक्षरनिकरि जैसे

समाके अर लोकनिकै अर धर्मके क्षोभ नाहीं उपजै ऐसे विनयपूर्वक प्रश्न करना, उत्तरकूं आदरतें अंगीकार करना सो शास्त्रका विनय है। तथा शास्त्रकूं उच्चआसनपर धरि नीचा बैठना, प्रशंसा स्तवन करना इत्यादिक शास्त्रका विनय करना। ऐसे देव गुरु शास्त्रका विनय है सो धर्मका मूल है।

बहुरि जो रागद्वेषकरि आत्माका घात जैसे नाहीं होय तैसे प्रवर्त्तन करना सो आत्माका विनय है। जातें ऐसा विचारै है—अब यो मेरो जीव चतुर्गतिमें मति परिभ्रमण करो, अब मेरा आत्मा मिथ्यात्व कषाय अविनयादिकरि संसार परिभ्रमणके दुःख मति प्राप्त होहु। ऐसे चिंतवन करता मिथ्यात्व कषाय अविनयादिककरि आत्माका ज्ञानादिक गुण घात नाहीं करना सो आत्माका विनय है। याहीकूं निश्चय विनय कहिये है। यह तो परमार्थ विनय कह्या।

अब यहां ऐसा विशेष जानना। जाके मान कषाय घटि जाय ताहीके व्यवहारविनय है। कोऊ जीवका मोतैं अपमान मति होहु। जो अन्यका सन्मान करैगा सो आपहू सन्मानकूं प्राप्त होयगा। जो अन्यका अपमान करैगा सो आपहू अपमानकूं प्राप्त होय है। जो समस्तकूं मिष्टवचन बोलना सो विनय है। किसी जीवकूं तिरस्कार नाहीं करना सोहू विनय ही है। अपने घर आया ताका

यथायोग्य सत्कार करना, किसीकूं सन्मुख जाय ल्यावना, किसीकूं उठि खड़ा होना, एक हस्तकूं माथैं चढ़ावना, किसीकूं आइए २ इत्यादिक तीन वार कहि अंगीकार करना, कोऊकूं आदरकरि नजीक बैठावना, किसीकूं आसन-दान देना, किसीको आवो बैठो कहना, किसीके शरीरकी कुशलता पूछना तथा हम आपके हैं, हमकूं आज्ञाकरिये, भोजनपान करिए यह आपही का गृह है, ये गृह आपके आवनेतैं उच्च भया है; आपकी कृपा हमारे पर सनातनतैं है, ऐसे व्यवहार विनय है। तथा कोऊकूं हस्त उठाय माथैं चढ़ावना एता ही विनय है। और हू दान सन्मान कुशल पूछना, रोगी दुःखीका वैयावृत्य करना सो भी विनयवान ही के होय है। दुःखित मनुष्य तिर्यंचनिकूं विश्वास देना, दुःख श्रवण करना, अपना सामर्थ्य प्रमाण उपकार करना नहीं बननेका होय तो धीरता संतोषादिक का उपदेश देना ऐसे व्यवहारविनय है। सो परमार्थ विनयका कारण है, यशकूं उपजावै है, धर्म की प्रभावना करै है।

मिथ्यादृष्टिका हू अपमान नाहीं करना, मिष्टवचन बोलना, यथा योग्य आदर सत्कार करना, योही विनय है। महापापी द्रोही दुराचारीकूं हू कुवचन नाहीं कहना, एकेन्द्रिय विकलेन्द्रियादिक तथा सर्पादिक दुष्ट जीव तिनकी विराधना नहीं करना, याकी रक्षा करि प्रवर्तना सोही ज्ञान-

का विनय है। अन्यधर्मीनिका मंदिर प्रतिमादिकतैं वैर करि निंदा नाहीं करना। ऐसा परमार्थ व्यवहार दोय प्रकार के विनयको धारणकरि गृहस्थकूं प्रवर्तन करना योग्य है। देखो सकल संगका परित्यागी वीतरागी मुनीश्वरहूकूं कोऊ मिथ्यादृष्टि वन्दना करै हैं ताकूं आशीर्वाद देवैं हैं, चांडाल भील धीवरादिक अधमजाति हू वन्दना करैं तांकूं पापक्षयोस्तु इत्यादिक आशीर्वाद दे हैं। तातैं विनयअंग धारण करो हो तो बाल अज्ञान धर्मरहित का तथा नीच अधम जाति होय ताका हू विनय नाहीं करो तो हू तिरस्कार निंदा कदाचित् करना उचित नाहीं है। इस मनुष्य जन्मका मण्डन विनय ही है। विनय बिना मनुष्यजन्मकी एक घड़ी भी हमारे मति जावो, ऐसे भगवान् गणधरदेव कहै हैं। ऐसी विनयगुणकी महिमा जानि याका महान् अर्घ उतारण करो। हे विनयसंपन्नता अंग हमारे हृदयमें तू ही निरन्तर वास करि, तेरे प्रसादतैं अब मेरा आत्मा कदाचित् अष्टमदनिकरि अभिमानकूं मति प्राप्त होहु। ऐसे विनयसंपन्नता नाम अङ्गकी दूजी भावना वर्णन करी ॥२॥

३. शीलव्रतेष्वनतिचार भावना

अब, तीसरी शीलव्रतेष्वनतीचार भावना कहै हैं—शीलव्रतेष्वनतीचारका ऐसा अर्थ राजवार्तिकमें कह्या:—

अहिंसादिक पंचव्रत अर इन व्रतनिका पालन के अर्थि क्रोधादिककषायका वर्जनादि रूप शीलनिमैं जो मनवचनकाय की निर्दोषप्रवृत्ति सो शीलव्रतेष्वनतिचारभावना है। शील नाम आत्मा का स्वभावका है। आत्मस्वभाव का नाश करनेवाला हिंसादिक पांच पाप हैं, तिनमें कामसेवन नाम एक ही पाप हिंसादिक समस्तपापनिकूं पुष्ट करै है, अर क्रोधादिकषायनिकी तीव्रता करै है। तातैं यहाँ जयमाला में ब्रह्मचर्यकी ही प्रधानताकरि वर्णन करिये है। यो शील दुर्गतिके दुःख का हरनेवाला है, स्वर्गादिक शुभगतिका कारण है, तपसंयमका जीवन है। शीलविना तप करना, व्रत धारणा, संयम पालना, मृतकका अङ्ग समान देखने मात्र है, कार्यकारी नाहीं, तैसे शीलरहित का तपव्रतसंयम, धर्मकी निंदा करावनेवाला है। ऐसा जानि शील नाम धर्म का अङ्गकूं पालन करहु, अर चंचल मनरूप पक्षीकूं दमो, अविचाररहित शुद्धशीलकूं पुष्ट करो, धर्मरूपवनके विध्वंस करनेवाला मनरूप मदोन्मत्त हस्तीकूं रोको। चलायमान हुआ मनरूप हस्ती महान् अनर्थ करै है। हस्ती मदवान होय तदि ठाणमेंतैं निकलि भागै है। अर मनरूपहस्ती कामकरि उन्मत्त होय तब समभावरूपी ठाणतैं निकलि भागै है। तथा कुलकी मर्यादा संतोषादि छांडि निकसै है। मदोन्मत्त हस्ती तो सांकल तुड़ाय जाय है अर मनरूप हस्ती सुबुद्धिरूप सांकल तोड़ि विचरै है। हस्तीतो

चलावनेवाला महाव्रतकूं नाखै है अर कामीका मन सम्यक्धर्मके मार्गमें प्रवर्तावनेवाला ज्ञानकूं छांडै है। हस्ती तो अंकुशकूं नाहीं मानै है अर मनरूप हस्ती गुरुनिके शिक्षाकारी वचनकूं नाहीं मानै है। हस्ती तो महाफल अर छाया का देनेवाला वृक्षकूं उखाडि पटकै है अर कामकरि व्याप्त मन है सो स्वर्गमोक्षरूप फलका देने वाला अर यशरूप सुगन्धकूं विस्तारता, सकल विषयांकी आतापकूं हरनेवाला, ब्रह्मचर्यरूप वृक्षकूं उखाडि डालै है। हस्ती तो मल कर्दमादिक दूर करनेवाला सरोवरमें स्नान करि मस्तक ऊपरि धूल नाखता धूलिरजमें क्रीडा करै है। अर कामकरि व्याप्त मन सिद्धान्तरूप सरोवरमें अवगाहनकरि अनेक अज्ञानरूप मैलकूं धोय करके हू पापरूप धूलिमें क्रीडा करै है। हस्ती तो कर्णनिकी चपलताकूं धारण करै है अर कामसंयुक्त मन पांचूं इन्द्रियनिका विषयनिमें चंचलता धारण करै है। हस्ती तो हस्तिनीमें रति करै है, कामसंयुक्त मन कुबुद्धिरूप हस्तिनीमें रचै है। हस्ती हू स्वच्छन्द डोलै, मन हू स्वच्छन्द डोलै। हस्ती तो मदकरिके मत्त है, कामीका मन रूपादिक अष्टमदकरि मत्त है। हस्तीके नजीक तो कोऊ पथिक नाहीं आवै। दूर मार्गि जाय, अर कामकरि उन्मत्त के नजीक कोऊ एक हू गुण नाहीं रहे है। यातैं इस कामकरि उन्मत्त मनरूप हस्तीकूं वैराग्यरूप स्तम्भकै बांधो, यो खुल्यो हुयो महा

अनर्थ करैगा। यो काम अनंग है याकै अङ्ग नाहीं है। यो तो मनसिज है, मनहीमें याका जन्म है। ज्ञानकूं मथन करनेवाला है याहीतैं याकूं मनमथ कहिये है। संवरको अरि कहिये वैरी है यातैं संवरारि कहिये है। कामतैं खोटा दर्प जो गर्व सो उपजै है यातैं याकूं कंदर्प कहिये है। याकरि अनेक मनुष्य तिर्यंच परस्पर विरोधकरि मरि जाय हैं यातैं याकूं मार कहिये हैं। याहीतैं मनुष्यनिमें अन्य इन्द्रियनिके भोग तो प्रगट हैं अर कामके अंग ढके हुए हैं। कामके अंगका नामहू उत्तम पुरुष नाहीं उच्चारण करैं हैं। या समान अन्य पाप नाहीं है। धर्मतैं भ्रष्ट करनेवाला काम है, यो काम देवतानिकूं भ्रष्ट करि आपके आधीन किये हैं, याहीतैं समस्त जगतकूं जीतनेवाला एक काम है। याका विजय करनेवाला मोहकूं सहजही जीतै है। याहीतैं कामके परिवारके अर्थि मनुष्यनी तथा देवांगना तथा तिर्यंचनी इनका संसर्ग-संगति कामविकारके उपजावनेवाली दूरहीतै परिहार करो।

स्त्रीनिमें मनवचनकायकरि रागका त्याग करो। आप कुशीलके मार्गमें नाहीं चलना, अन्यकूं कुशीलके मार्गका उपदेश मति करो। अन्य कोऊ कुशीलके मार्गमें प्रवर्तन करैं, तिनकी अनुमोदना भव्य जीव नाहीं करैं हैं। बालिका स्त्रीकूं देखि पुत्रीवत् निर्विकार-बुद्धि करो। अर यौवनरूप करींद्र ऊपरि चढी, लावण्य-सौन्दर्यरूप

जलमें जाका सब अङ्ग डूबि रह्या ऐसी रूपवती स्त्री में पविनवत् निर्विकार बुद्धि करहु, अर याहूं सन्मान-दान मति करो, वचन-करि आलाप मति करो। शीलवान् है तिनकी दृष्टि स्त्रीनिमें प्राप्ति होते ही मुद्रित हो जायं हैं। स्त्रीनिमें वचनालाप करैगा, स्त्री के अङ्गनिका अवलोकन करैगा ताके शीलका भंग अवश्य होयगा। तातैं जो गृहस्थ है ताकैं तो एक अपनी स्त्रीविना अन्य स्त्रीनिकी संगति तथा अवलोकन वचनालापकरि परिहार, अर अन्य स्त्रीनि की कथाका स्वप्नहूमें विचार नाहीं रहै है। अर एकान्त में माता बहन पुत्रीकी सङ्गति हू नाहीं करै हैं। मुनीश्वर तो समस्त स्त्रीमात्रका ही सम्बन्ध नाहीं करै हैं, स्त्रानिमें उपदेश नाहीं करै हैं जातैं स्त्रीका नाम ही प्रगट दोषनिकूं कहै हैं। स्त्री समान इस जीवकूं नष्ट करने वाला अन्य कोऊ अरि कहिये वैरी नाहीं। तातैं उत्तम पुरुष याहूं नारी कहै हैं। दोषनिकूं प्रत्यक्ष देखते-देखते आच्छादन करै तातैं याका नाम स्त्री है। याका देखने करि पुरुषको पतन हो जाय तातैं याका नाम पत्नी है। कुमरण करनेका कारण है तातैं याका नाम कुमारी है। याकी सङ्गतिकरि पुरुषबुद्धिबलादिका नष्ट होजाय यातैं याका नाम अबला है। संसारके बन्धका कारण है यातैं याका नाम वधू है। कुटिलता मायाचारका स्वभाव धरैं है यातैं याका नाम वामा है। याका नेत्रनिमें कुटिलता रहै है

यातैं याका नाम वामलोचना है।

शीलवन्तकूं इन्द्र नमस्कार करै हैं। शीलवान पुरुष रत्नत्रयरूप धन लेय कामादिक लुटेरानिका भयरहित निर्वाणपुरी प्रति गमन करै हैं। शीलकरि भूषित रूपरहित होय तथा मलीन होय रोगादिककरि व्याप्त होजाय तो हू अपना संसर्गकरि समस्त सभानिवासीनिकूं मोहित करै हैं, सुखित करै है। अर शीलरहित व्यभिचारी रूपकरि कामदेव समान है तोहू लोकनिमें धुधकार करिये है। आतैं याका नाम ही कुशील है। शीलनाम स्वभावका है। कामी मनुष्यका शील जो आत्माका स्वभाव सो खोटा होजाय है। यातैं याकूं कुशील कहिये हैं। बहुरि कामी मनुष्य धर्मतैं, आत्माका स्वभावतैं, व्यवहार की शुद्धतातैं चलि जाय हैं यातैं याकूं व्यभिचारी कहिये है। या समान जगमें कुकर्म नाहीं, तातैं कामकूं कुकर्म कहिये हैं। यातैं मनुष्य पशुके समान होजाय यातैं याकूं पशुकर्म कहिये हैं। ब्रह्म जो आत्मा ताका ज्ञानदर्शनादिस्वभाव ताका घात यातैं होय हैं, तातैं याकू अब्रह्म कहि है। तातैं कुशीलीकी संगतितैं कुशीली होय जाय हैं। जो शील की रक्षा करी सो ही दीक्षा तप व्रत संयम समस्त पाल्या। बहुरि जो अपना स्वभावतैं नाहीं चलायमान होना ताकूं मुनीश्वर शील कहै हैं। शीलनामका गुण समस्त गुणनि में बड़ा है। शीलकरिसहित पुरुषका तो थोरा हू ज्ञान प्रव-

प्रचुर फलकूं फलैं हैं अर शीलविना बहुत हू तप व्रत है सो निष्फल है। इस प्रकार जानि अपने आत्मामें शीलकी शुद्धताके अर्थि शीलहीकूं नित्य पूजहु। यो शीलव्रत मनुष्य जन्महीमें है, अन्य गति में नाहीं है। तातैं जन्म सफल किया चाहो हो तो शील की ही उज्ज्वलता करो। ऐसैं शीलव्रतेष्वनतीचार नाम तीसरी भावना वर्णन करी ॥ ३ ॥

४. अभीक्ष्णज्ञानोपयोग भावना

अब अभीक्ष्णज्ञानोपयोग नाम चौथी भावना का वर्णन करै हैं। भो आत्मन्! यो मनुष्यजन्म पाय निरन्तर ज्ञानाभ्यास ही करो। ज्ञानका अभ्यास विना एक क्षणहू व्यतीत मती करो। ज्ञानके अभ्यास बिना मनुष्य पशु समान है। यातैं योग्यकाल में जिन आगमको पाठ करो, अर समभाव होय तदि ध्यान करो, अर शास्त्रनिके अर्थ का चितवन करो, अर बहुत ज्ञानी गुरुजन तिनमें नम्रता वन्दना विनयादिक करो, अर धर्म श्रवण करने के इच्छुक कूं धर्मका उपदेश करो। याही को अभीक्ष्णज्ञानोपयोग कहे हैं, इस अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग नाम गुणका अष्टद्रव्यनितैं पूजन करके यांका अर्घ उतारन करो और पुष्पनिकी अंजुलि अग्रभागविषै क्षेपण करो। यहां ज्ञानोपयोग है सो चैतन्यकी परिणति है। याहीतैं क्षणक्षणमें निरन्तर चैतन्य की भावना करना। मेरे अनादि कालतैं काम क्रोध अभि-

मान, लोभादिक संग लगि रहे हैं इनका संस्कार अनादितैं मेरे चैतन्यरूपमें घुलि रहे हैं, अब ऐसी भावना होहु जो भगवानके परमागमका सेवनका प्रभावतैं मेरा आत्मा रागद्वेषादिकतैं भिन्न अपना ज्ञायकस्वभावरूपही में ठहरि जाय, अर रागादिकनिके वशीभूत नाहीं होय सो ही मेरी आत्माका हित है। अथवा नवीन शिष्यनिके आगे श्रुतका अर्थ ऐसा प्रकाश करना जो संशयादिक रहित शिष्यनिका हृदयमें यथावत् स्वपर पदार्थ का स्वरूप प्रगट हो जाय, पाप पुण्यका स्वरूप, लोक–अलोकका स्वरूप, मुनि-श्रावक का धर्मको सत्यार्थ निर्णय हो जायतैं तातैं ज्ञानाभ्यास करना। तथा अपने चित्तमें संसार भोगदेहतैं विरक्तता चितवन करना। संसार-देह भोगनिका यथार्थ स्वरूपका चितवन करनेतैं रागद्वेषमोह ज्ञानकूं विपरीत नहीं करि सकै हैं।

समस्त द्रव्यनिमें एक भिन्या हुआ हू आत्माका भिन्न अनुभव होय सो ही ज्ञानोपयोग है। ज्ञानाभ्यास करके विषयनिकी वांछा नष्ट होय है, कषायनिका अभाव होय है। माया, मिथ्यात्व निदान–तीन शल्य ज्ञानके अभ्यास करि नष्ट होय हैं। ज्ञानके अभ्यास ही तैं मन स्थिर होय है, ज्ञानके अभ्यास करके ही अनेक प्रकारके विकल्प नष्ट होय हैं, ज्ञानाभ्यास करके धर्मध्यानमें, शुक्लध्यानमें अचल होय तिष्ठै है। ज्ञानाभ्यासतैं ही व्रत-संयम

से चलायमान नाहीं होय है। ज्ञानाभ्यास करके ही जिनेंद्र का शासन आज्ञा (प्रवर्तै) है, अशुभकर्मका नाश है ज्ञानाभ्यास करके ही होय, प्रभावना हू जिन धर्मका ज्ञानके अभ्यास करके ही होय, ज्ञानका अभ्यासतैं लोकनिका हृदयतैं पूर्व संचय किया पाप क्षण नष्ट होजाय है। अज्ञानी घोर तपकरि कोटि पूर्वमें जिस कर्मकूं खिपावै तिस कर्मकूं ज्ञानी अन्तर्मुहूर्त्तमें खिपावै है। जिनधर्मका स्थम्भ ज्ञानका अभ्यास ही है। ज्ञान ही के प्रभावतैं समस्त विषयनिकी वांछारहित होय संतोष धारण करिये है। ज्ञानहीतैं उत्तमक्षमादि गुण प्रगट होय है। ज्ञानाभ्यासतैं ही भक्ष्य अभक्ष्य, योग्य अयोग्य, त्यागने योग्य ग्रहण करने योग्यका विचार होय है। ज्ञान विना परमार्थ अर व्यवहार दोऊ नष्ट होजाय है। ज्ञानरहित राजपुत्रहू का निरादर होय है।

ज्ञान समान कोऊ धन नाहीं है। ज्ञानका दान समान कोऊ दान नाहीं है। दुःखित जीवकूं सुखितकूं सदा ज्ञान ही शरण है। ज्ञान ही स्वदेशमें, अन्य देशमें आदर करावनेवाला परमधन है। ज्ञान धन है सो किसी करि चोरया जाय नाहीं, किसीकूं दिये घटै नहीं। ज्ञान ही सम्यग्दर्शन उपजावै है। ज्ञानहीतैं मोक्ष होय है। सम्यग्ज्ञान आत्माका अविनाशी स्वाधीन धन है। ज्ञानविना संसार समुद्रमें डूबतेकूं हस्तावलम्बन देय कौन रक्षा करे? विद्या

समान आभूषण नाहीं। विद्या विना आभूषणमात्रतैं ही सत्पुरुषनिकै आदरने योग्य होय नाहीं है। निर्धनकै परम निधान प्राप्त करानेवाला एक सम्यग्ज्ञान ही है। यातैं हे भव्यजीवो! भगवान् करुणानिधान वीतराग गुरु तुमकूं, यो शिक्षा करैं हैं—अपनी आत्माकूं सम्यग्ज्ञानके अभ्यास हीमैं लगावो, अर मिथ्यादृष्टिनिकरि प्ररूप्या मिथ्याज्ञान का दूरहीतैं परिहार करो, सम्यक् मिथ्याकी परीक्षा करि ग्रहण करो, अपना संतानकूं पढावो, अन्यजननिकूं विद्या का अभ्यास करावो। जे धनवान होय अपने धनकूं सफल करया चाहो तो पढने पढानेवालेहूं आजीविकादिक देय करि थिरता करावो, पुस्तक लिखाय विद्या पढनेवालेहूं देवो, पुस्तकनिकूं शुद्ध करी करावो, पठन पाठनके अर्थि स्थान देवो, निरन्तर पठने श्रवण में ही मनुष्य जन्मका काल व्यतीत करो। यो अवसर व्यतीत होतो चल्यो जाय है। जेतैं आयु काय इन्द्रियां बुद्धि बन रही हैं तेतै मनुष्य जन्मकी एक घडी हू सम्यग्ज्ञानविना मति खोवो। ज्ञानरूप धन परलोकमैं हू लार जायगा। इस अभीक्ष्ण-ज्ञानोपयोगकी महिमा कोटि जिह्वानिकरि हू वर्णन नाहीं करी जाय है। याहीतैं ज्ञानोपयोगकी परमशरणके अर्थि गृहस्थ धनसहित होय सो भावना भाय अर्घ उतारण करैं। अर गेहके त्यागी होय ते निरन्तर भावना भावो। ऐसैं अभीक्ष्णज्ञानोपयोग नाम चौथी भावना वर्णन करी॥४॥

५. संवेग भावना

अब पञ्चमी संवेग भावना का वर्णन करै हैं—जो संसार देह भोगनितै विरक्तपना सो संवेग है। तथा धर्म में अर धर्म का फल में अनुराग सो संवेग है। अथवा संसार देह भोगनितैं विरक्त होय करि धर्मवैं अनुराग करना सो संवेग है। संसार में जिस पुत्रवं राग करिये है सो जन्म लेते ही तो स्त्री का यौवन सौंदर्यादिक बिगाडै, अर जन्म हुये पाछैं बड़ी आकुलता करि, बड़ा कष्ट करि, धन का खरचकरि पुत्रकूं बधाइये है, अर रोगादिकनिका बड़ा जाबता अर क्षण-क्षण में बडी सावधानीतैं महामोही महारागी ग्लानि रहित होय बड़ा कष्ट सहिकरि बड़ा करिये है। बड़ा होय तदि आछा भोजन, आछा आभरण, आछा स्थानकूं हठात् ग्रहण करे है। अर जो मूर्ख होय, व्यसनीहोय, तीव्रकषायी होय तो रात्रि दिन क्लेश होने का परिणाम नाहीं कहने में आवै है। पुत्र के मोहतैं परिग्रह में बड़ी मूर्च्छा बधै है, अर समर्थ होजाय, अर अपनी आज्ञा में मंद होय सो महा आर्त रूप हुआ मरण पर्यंत क्लेश नाहीं छांडै है। अर जो पिताहूं अपना कार्य करने वाला समझै जेते प्रीति करै है, असमर्थ होजाय ताकूं राग नाहीं करै, धन रहित का निरादर करै है। यातैं पुत्र का स्वरूपकूं समझि राग त्यागि परम

धर्ममें राग करो। पुत्र के अर्थि अन्यायतैं धनादिपरिग्रह के ग्रहण का परित्याग करो।

बहुरि स्त्री हू मोहनाम ठिगकी महाराशी है, ममता उपजाने वाली है, तृष्णाकूं बधावने वाली है। यातैं स्त्री में तीव्रराग है सो धर्म में प्रवृत्ति का नाश करै है, लोभकूं अत्यन्त बधावै है, परिग्रह में मूर्च्छा बधावै है, ध्यान स्वाध्याय में विघ्न करै है, विषयनि में अंध करने वाली है, क्रोधादि च्यारों कषायनिकी तीव्रता करने वाली है, संयम का घात करने वाली है, कलह का मूल है, दुर्ध्यान को स्थान है, मरण बिगाडने वाली है। इत्यादिक दोषनिका मूल कारण जानि स्त्री के संग में राग भाव छांडि वीतराग धर्ममें अपना सम्बन्ध करो। बहुरि कलिकाल के मित्र हू विषयनि में उलझावनहारे हैं, समस्त व्यसननि में सहकारी हैं। धनवान देखे हैं तिनतैं अनेक प्रकार मित्रता करै हैं। निर्धनतैं कोऊ संभाषण हू नाहीं करै है। तातैं भो ज्ञानी जन हो! जो संसार पतन को भय है तो अन्य समस्ततैं मित्रता छांडि परमधर्म में अनुराग करो। अर संसार निरंतर जन्म-मरण रूप है। जन्म दिनतैं ही मरण के सन्मुख निरंतर प्रयाण करै है। अनन्तानंतकाल जन्म-मरण करते भया। तातैं पंच परिवर्तनरूप संसारतैं विरागता भावो।

अर ये पंचइन्द्रियनि के विषय हैं ते

स्वरूपकूं भुलावने वाले हैं, तृष्णा के बधावने वाले हैं, अतृप्तिता के करने वाले हैं, विषयनिकीसी आताप त्रैलोक्य में अन्य नाहीं है। विषय हैं ते नरकादि कुगति के कारण हैं, धर्मतें पराङ्मुख करै हैं, कषायनिकूं बधावने वाले हैं, विषके समान मारने वाले हैं, अर अग्निसमान दाह के उपजाने वाले हैं ताते विषयनितें राग छोडना ही परम कल्याण है। अर शरीर है सो रोगनिका स्थान है, महामलीन दुर्गन्ध सप्तधातुमय है, मल मूत्रादिककरि भरया है, वातपित्तकफमय है, पवन के आधारतें हलन चलनादिक करै है, सासता क्षुधातृषा की वेदना उपजावै है। समस्त अशुचिता पुंज है, दिन दिन जीर्ण होता चल्या जाय है, कोटिनि उपाय करके हू रचा किया हुआ मरणकूं प्राप्त होय है। ऐसा देहतें विरागता ही श्रेष्ठ है। ऐसे पुत्र मित्र कलत्र संसार भोग शरीर का दुख करने वाला स्वरूप जानि विराग भावकूं प्राप्त होना सो संवेग है। संवेग भावनाकूं निरन्तर चिन्तवन करना ही श्रेष्ठ है। यातें मेरे हृदय में निरन्तर संवेग भावना तिष्ठो, ऐसा चितवन करते संसार देह भोगनितें विरक्तता होय तदि परम धर्म में अनुराग होय है।

धर्म शब्द का अर्थ ऐसा जानना—जो वस्तु का स्वभाव है सो धर्म है, तथा उत्तमक्षमादि दशलक्षण रूप धर्म है, तथा रत्नत्रयरूप धर्म है, तथा जीवनि की दयारूप धर्म है।

ऐसे पर्यायबुद्धि शिष्यनि के समझाने के अर्थि धर्मशब्दकूं च्यार प्रकारकरि वर्णन किया है, तो वस्तु जो आत्मा ताका स्वभाव ही दशलक्षण है। क्षमादि दश प्रकार आत्मा का ही स्वभाव है अर सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र हू आत्मातैं भिन्न नाहीं है। अर दया है सो हू आत्मा ही का स्वभाव है, सो ऐसा जिनेंद्रकरि कह्या आत्मा का स्वभाव रूप दशलक्षण धर्म में जो अनुराग, सो संवेग धर्म है। अर कपटरहित रत्नत्रय धर्म में अनुराग करना सो संवेग धर्म है, तथा मुनिश्वरनिका अर श्रावकका धर्म में अनुराग सो संवेग है, तथा जीवनिकी रक्षा करने रूप जीवनिकी दया में परिणाम होना सो भगवान् ने संवेग कह्या है। अथवा वस्तु जो आत्मा ताका स्वभाव केवलज्ञान केवलदर्शन है, तिस स्वभाव में लीन होना सो प्रशंसा करने योग्य संवेग है। जातैं धर्म में अनुराग परिणाम सो संवेग है। तथा धर्म का फलकूं अत्यन्तमिष्ट जानना सो संवेग है, ये तीर्थंकरपना, चक्रवर्ती होना नारायण प्रतिनारायण बलभद्रादिक उपजना सो धर्म ही का फल है। तथा बाधारहित केवली होना तथा स्वर्गादिकनि में महान ऋद्धि का धारक देव होना, तथा इन्द्र होना तथा अनुत्तरादिक विमान में अहमिंद्र होना सो समस्त पूर्व जन्म में आराधन किया धर्म का फल है।

बहुरि और जो भोगभूमि आदि में

राजपदा पावना, अखंड ऐश्वर्य पावना, अनेक देशनि में आज्ञा प्रवर्तन, प्रचुर धनसंपदा पावना, रूप की अधिकता पावनी, बलकी अधिकता, चतुरता, महान् पंडितपना, सर्व लोक में मान्यता, निर्मल यशकी विख्यातता, बुद्धि की उज्ज्वलता, आज्ञाकारी धर्मात्मा कुटुम्ब का संयोग होना, सत्पुरुषनि की संगति मिलना, रोगरहित होना, दीर्घआयु, इन्द्रियनि की उज्ज्वलता, न्यायमार्ग में प्रवर्तना, वचन की मिष्टता इत्यादिक उत्तम सामग्री का पावना है सो हू कोऊ धर्म में प्रीति करी है, तथा धर्मात्मानिका सेवन किया है, धर्म की तथा धर्मात्मानिकी प्रशंसा की है ताका फल है। कल्पद्रुम चिन्तामणि समस्त धर्मात्माके द्वारे खड़े जानहू। धर्मके फल की महिमा कोऊ कोटि जिह्वानिकरि कहनेकूं समर्थ नाहीं होइये है। ऐसे धर्मके फलकूं त्रैलोक्य में उत्कृष्ट जाने है ताके संवेग भावना होय है। बहुरि धर्मसहित, सधर्मीनिकूं देखि, आनन्द उपजना, तथा धर्म की कथनी में आनन्दमय होना और भोगनितें विरक्त होना सो संवेग नामा पंचम अंग है। याकूं आत्माका हित समझि याकी निरन्तर भावना भावो। अर भावनाके आनन्द करि सहित होय याकी प्राप्तिके अर्थि याका महा अर्घ उतारण करो। ऐसें संवेगनामा पंचम भावना वर्णन करी ॥ ५॥

६. शक्तितस्त्याग भावना

अब शक्तिप्रमाणत्याग भावना वर्णन करिये है। त्यागनाम भावना प्रशंसायोग्य मनुष्यजन्मका मण्डन है। अपने हृदयमें त्यागभाव रखनेके अर्थि अनेक रत्नस्वरूप पादित्रनिकूं बजाय याका महान अर्घ उतारण करो। बाह्य आभ्यन्तर दोय प्रकारका परिग्रहतैं ममता छांडिनेकरि त्यागधर्म होय है। अन्तरङ्गपरिग्रह चौदह प्रकार हैं सो ऐसे जानना। जाण्या बिना ग्रहण त्याग वृथा है। मिथ्यात्व, अर स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेदरूप परिणाम सो वेदपरिग्रह है। हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, राग, द्वेष क्रोध, मान, माया, लोभ ऐसे चौदह प्रकार अन्तरङ्ग परिग्रह जानना। तहां जो शरीरादिक पर-द्रव्यनिमें आत्मबुद्धि करना सो मिथ्यात्व नाम परिग्रह है। यद्यपि जो वस्तु है सो अपना द्रव्य, अपना गुण, अपना पर्याय है सो ही अपना स्वरूप है। जैसे [illegible] द्रव्य है, सुवर्णके पीतादिक गुण हैं, कुण्डलादि [illegible] सो समस्त सुवर्ण ही है, यातैं सुवर्ण [illegible] अन्य वस्तु सुवर्णके नाहीं, सुवर्ण है सो [illegible] अन्य वस्तुका कोऊ हुआ नाहीं, होहै नाहीं, [illegible] अपना स्वरूप है सो ही आपका है। [illegible] आत्माहीका है, आत्माका अन्य कोऊ [illegible] [illegible]

मैं राजा, मैं रङ्क, मैं स्वामी, मैं सेवक, मैं क्षत्रिय, मैं वैश्य, मैं शूद्र, मैं वृद्ध, मैं बाल, मैं बलवान, मैं निर्बल, मैं मनुष्य, मैं तिर्यंच इत्यादिक कर्मकृत विनाशीक परद्रव्य कृत पर्यायमें आत्मबुद्धि करना सो ही मिथ्यात्वनाम परिग्रह है। मिथ्यादर्शनतैं ही मेरा गृह, मेरा पुत्र, मेरा राज, मैं ऊंच, मैं नीच इत्यादि नाम मानि समस्त परपदार्थनिमें आत्मबुद्धि करै है, पुद्गलका नाशकूं अपना नाश मानै है, याके बधनेतैं अपना बधना, घटनेतैं घटना मानि पर्यायमें आत्मबुद्धिकरि अनादिकालतैं आपा भूलि रह्या है। यातैं समस्त परिग्रहमें आत्मबुद्धिका मूल मिथ्यात्वनामपरिग्रह है। जाके मिथ्याज्ञान नाहीं सो परद्रव्यनिमें 'हमारा' ऐसैं कहता हुआ हू परद्रव्यनिमें कदाचित् आपा नहीं मानै है।

बहुरि वेदके उदयतैं स्त्री पुरुष न में जो कामसेवनके परिणाम होय हैं तिस काममें तन्मय होय कामके भावकूं आत्मभाव मानना सो वेदपरिग्रह है। काम तो वीर्यादिक [illegible] प्रेरया देहका विकार है। इसकूं अपना स्वरूप जानै सो वेदपरिग्रह है। बहुरि धन ऐश्वर्य पुत्र स्त्री आभरणादि परद्रव्यादिकमें आसक्तता सो रागपरिग्रह है। अन्यका विभव परिवार ऐश्वर्य पाण्डित्यादिक देखि वैरभाव करना सो द्वेषपरिग्रह है। हास्यमें आसक्त होना सो हास्यपरिग्रह है। अपना मरण होनेतैं, मित्रनिका परिग्रहादिकनिकरि

वियोग होनेतैं निरन्तर भयवान रहना सो भयपरिग्रह है। पंच इन्द्रियनिकरि वांछित भोग-उपभोगके भोगनिमें लीन हो जाना सो रति परिग्रह है। अनिष्टवस्तुका संयोगमें परिणामनिका संक्लेशरूप होना सो अरतिपरिग्रह है। अपना इष्ट स्त्री पुत्र मित्र धन जीविकादिकका वियोग होते तिनका संयोगकी वांछा करके संक्लेशरूप होना सो शोक परिग्रह है। बहुरि घृणावान पुद्गलनिकं देखनेतैं श्रवणतैं चिन्तवनतैं स्पर्शनतैं परिणाममें ग्लानि उपजना सो जुगुप्सा नाम परिग्रह है। अथवा अन्यका उदय देखि परिणाम में क्लेशित होना सुहावे नाहीं सो जुगुप्सा परिग्रह है। बहुरि परिणाममें रोषकरि तप्त होना सो क्रोध परिग्रह है। बहुरि उच्चकुल जाति धन ऐश्वर्य रूप बल ज्ञान बुद्धि इनकरि आपकूं अधिक जानि मद करना तथा परकूं घाट जानि निरादर करना, कठोर परिणाम रखना सो मान परिग्रह है। अनेक कपटछलादिकरि वक्रपरिणाम रखना सो माया परिग्रह है, परद्रव्यनिकं ग्रहणमें तृष्णा सो लोभ परिग्रह है। ऐसें सांसारिक भ्रमणके कारण आत्माके ज्ञानादिक गुणनिके घातक चौदह प्रकार अन्तरङ्गपरिग्रह हैं अर इनहीतैं मूर्च्छाके कारण धनधान्यक्षेत्रसुवर्णादिक, स्त्रीपुत्रादि चेतन अचेतन बाह्य परिग्रह हैं। ऐसे अन्तरङ्ग बहिरङ्ग दोय प्रकारके परिग्रहके त्यागनेतैं त्याग धर्म होय है। यद्यपि बाह्यपरिग्रहरहित तो दरिद्री मनुष्य स्वभाव ही तैं होय हैं

परन्तु अभ्यन्तर परिग्रहका त्याग बहुत दुर्लभ है। यातैं दोय प्रकार परिग्रह का एक देश त्यागतो श्रावकके होय है अर सकल त्याग मुनिश्वरनिके होय है।

बहुरि कषायनि का त्यागतैं त्यागधर्म होय है। बहुरि इन्द्रियनिकूं विषयनितैं रोकनेकरि त्याग होय है। बहुरि रसनिका त्यागकरि त्यागधर्म होय है, जातैं रसना इन्द्रिय की लोलुपता जीतनेतैं समस्त पापनिका त्याग सहज होय है। बहुरि जिनेन्द्रका परमागमका अध्ययन करना, अन्यकूं अध्ययन करावना, शास्त्रनिकूं लिखाय देना, शोधना शुधावना सो परम उपकार करनेवाला त्यागधर्म होय है। बहुरि मनके दुष्टविकल्पनिके कारण छांडि चारि अनुयोग की चरचामें चित्त लगावना सो त्यागधर्म है। बहुरि मोहका नाश करनेवाला धर्मका उपदेश श्रावकनिकूं देना सो महापुण्य का उपजानेवाला त्यागधर्म है। वीतरागधर्मका उपदेशतैं अनेकप्राणीनिका परिणाम पापतैं भयभीत होय है, धर्मके प्रभावकूं अनेक प्राणी प्राप्त होय हैं। बहुरि उत्तम मध्यम जघन्य ऐसैं तीन प्रकारके पात्रनिकूं भक्तिकरि युक्त होय अहारदान देना, प्रासुक औषधि देना, ज्ञानके उपकरण सिद्धान्त के पढने योग्य पुस्तकका दान देना, मुनिके योग्य तथा श्रावकके योग्य वस्तिका दान देना, गुणनिके धारकनिकूं तपकी वृद्धि करनेवाला, स्वाध्यायमें लीन करने वाला,

ध्यानकी वृद्धिका कारण आहारादिक च्यारि प्रकार का दान परमभक्तितैं विकसितचित्त हुआ, अपना जन्मकूं कृतार्थ मानता, गृहाचारकूं सफल मानता, बड़ा आदरतैं पात्रदान करो। पात्रदान होना महाभाग्यतैं जिनका भला होना है तिनके होय है। पात्र का लाभ होना ही दुर्लभ है। अर भक्तिसहित पात्रदान होय जाय ताकी महिमा कहनेकूं कौन समर्थ है? बहुरि क्षुधा-तृषाकरि जो पीड़ित होय तथा रोगी होय, दरिद्री होय, वृद्ध होय, हीन होय तिनकूं अनुकंपाकरि दान देना सो समस्त त्यागधर्म है। त्यागहीतैं मनुष्यजन्म सफल है। त्यागहीतैं धन-धान्यादिक पावना सफल है। त्याग बिना गृहस्थका गृह है सो श्मशान समान है, अर गृहस्थीका स्वामी पुरुष मृतक समान है, अर स्त्री पुत्रादिक गृद्धपक्षी समान है। सो याका धनरूप मांस चूंटि-चूंटि खाय है। ऐसें त्याग भावना वर्णन करी ॥६॥

७. शक्तितस्तप भावना

अब शक्तिप्रमाणतप भावना अंगीकार करना। क्योंकि यो शरीर दुःखको कारण है। अनेक दुःख यो शरीर उपजावै है। अर यो शरीर अनित्य है, अस्थिर है, अशुचि है, कृतघ्नवत् है, कोट्यां उपकार करता हू जैसें कृतघ्न अपना नाहीं होय है तैसें देहके नाना उपकार सेवा करता

हू अपना नाहीं होय है। यातैं यथेष्टविधि करि याहू पुष्ट करना योग्य नाहीं, कृश करने योग्य है, तो हू यो गुण-रत्ननिके संचयको कारण है। शरीर विना रत्नत्रयधर्म नाहीं होय है। सेवक की ज्यों योग्य भोजन देय यथाशक्ति जिनेन्द्रका मार्ग तैं विरोधरहित कायक्लेशादि तप करना योग्य है। तप विना इन्द्रियनिकी विषयनि में लोलुपता घटै नाहीं। तप विना त्रैलोक्यका जीतनेवाला कामकूं नष्ट करनेकूं समर्थता होय नाहीं। तप विना आत्माकूं अचेत करनेवाली निद्रा जीती जाय नाहीं। अर तप विना शरीरका सुखिया स्वभाव मिटै नाहीं। जो तप के प्रभावतैं शरीरकूं साधि राख्या होय तो क्षुधा तृषा शीत उष्णादिक परिषह आये कायरता उपजै नाहीं, संयमधर्मतैं चलायमान होय नाहीं। तप है सो कर्म की निर्जरा का कारण है। यातैं तप ही करना श्रेष्ठ है।

अपनी शक्तिकूं नाहीं छिपाय करिकैं जैसैं जिनेन्द्र के मार्गतैं विरोधरहित होय तैसैं तप करो। तपनाम सुभट का सहाय विना ये अपना श्रद्धान ज्ञान आचरणरूप धनकूं काम क्रोध प्रमादादिक लुटेरे एक क्षण में लूटि लेवेंगे, तदि रत्नत्रयसंपदाकरि रहित चतुर्गतिरूप संसार में दीर्घकाल भ्रमण करोगे। याहीतैं जैसैं वात पित्त कफ ये त्रिदोष विपरीत होय रोगादिक नाहीं उपजावैं तैसैं तप करना उचित है। समस्ततैं प्रधान तप तो दिगम्बरपणा

है। कैसा है दिगम्बरपणा, जो परकी ममतारूप पापीहूं छिदि देहका समस्त शुचिपापणा छांडि, अपना शरीरतैं शीत उष्ण वायका वर्षा पवन डांस मच्छर मक्षिकादिकनि की बाधा के जीतने कूं समर्थ होय, कौपीनादिक समस्त वस्त्रादिक का त्यागकरि, दशदिशारूप ही जामें वस्त्र है ऐसा दिगम्बरपणा धारण करना सो अकिंचन्य तप जानना। जाका स्वरूपहूं देखते, अधम कायर बड़े बड़े शूरवीर कंपायमान हो जाय है। तातैं भो भव्यहूं प्रकट करने वाले हो! जो संसार के बंधन से छूटना चाहो हो तो जिनेश्वर संबंधी दीक्षा धारण करो, जाते अंग का शुचि-पा पणा नष्ट होय, उत्तम परीषह सहने में कायरताका अभाव होय सो तप है। जातैं स्वर्गलोककी रंभा अर तिलोत्तमा हू अपने हावभाव-विलासविभ्रमादिककरि मनहूं कामका विकार सहित नाहीं कर सकै ऐसा कामहूं नष्ट करै सो तप है।

- जो दोय प्रकार के परिग्रह में इच्छा का अभाव हो जाय सो तप है। तप तो यही है जो निर्जनवन अर पर्वतनिका भयंकर गुफा जहां भूत-राक्षसादिकनिके अनेक विकार प्रवर्तें, अर सिंह-व्याघ्रादिकनिके भयङ्कर प्रचार होय रहे, अर कोटर्या वृक्षनिकरि अन्धकार होय रह्या, अर जहां सर्प अजगर रीछ चीता इत्यादिक भयङ्कर दुष्टतिर्यंचनिका

हू अपना नाहीं होय है। यातैं यथेष्टविधि करि याहू पुष्ट करना योग्य नाहीं, कृश करने योग्य है, तो हू यो गुण-रत्ननिके संचयको कारण है। शरीर बिना रत्नत्रयधर्म नाहीं होय है। सेवक की ज्यों योग्य भोजन देय यथाशक्ति जिनेन्द्रका मार्ग तैं विरोधरहित कायक्लेशादि तप करना योग्य है। तप बिना इन्द्रियनिकी विषयनि में लोलुपता घटै नाहीं। तप बिना त्रैलोक्यका जीतनेवाला कामकूं नष्ट करनेकूं समर्थता होय नाहीं। तप बिना आत्माकूं अचेत करनेवाली निद्रा जीती जाय नाहीं। अर तप बिना शरीरका सुखिया स्वभाव मिटै नाहीं। जो तप के प्रभावतैं शरीरकूं साधि राख्या होय तो क्षुधा तृषा शीत उष्णादिक परिषह आये कायरता उपजै नाहीं, संयमधर्मतैं चलायमान होय नाहीं। तप है सो कर्म की निर्जरा का कारण है। यातैं तप ही करना श्रेष्ठ है।

अपनी शक्तिकूं नाहीं छिपाय करिकैं जैसें जिनेन्द्र के मार्गतैं विरोधरहित होय तैसें तप करो। तपनाम सुभट का सहाय बिना ये अपना श्रद्धान ज्ञान आचरणरूप धनकूं पाय क्रोध प्रमादादिक लुटेरे एक क्षण में लूटि लेवेंगे, तदि रत्नत्रयसंपदाकरि रहित चतुर्गतिरूप संसार में दीर्घकाल भ्रमण करोगे। याहांतैं जैसें वात पित्त कफ ये त्रिदोष विशीव होयं रोगादिक नाहीं उपजावैं तैसें तप करनों उचित है। समस्ततैं प्रधान तप तो दिगम्बरपणा

है। कैसा है दिगम्बरपणा, जो घरकी ममतारूप पारीकूं छेदि देहका समस्त सुखियापणा छांडि, अपना शरीरतैं शीत उष्ण तावडा वर्षा पवन डांस मच्छर मक्खिकादिकनि की बाधा के जीतने कूं सम्मुख होय, कोपीनादिक समस्त वस्त्रादिक का त्यागकरि, दशदिशारूप ही जामें वस्त्र हैं ऐसा दिगम्बरपणा धारण करना सो अतिशयरूप तप जानना। जाका स्वरूपकूं देखते, श्रवण करते बड़े बड़े शूरवीर कंपायमान हो जाय हैं। तातैं भो शक्तिकूं प्रकट करने वाले हो! जो संसार के बंधन से छूट्या चाहो हो तो जिनेश्वर संबंधी दीक्षा धारण करो, जातैं अंग का सुखियापणा नष्ट होय, उपसर्ग परीषह सहने में कायरताका अभाव होय सो तप है। जातैं स्वर्गलोककी रंभा अर तिलोत्तमा अपने हावभाव-विलासविभ्रमादिककरि मनकूं कामका विकार सहित नाहीं कर सकै ऐसा कामकूं नष्ट करै सो तप है।

जो दोय प्रकार के परिग्रह में इच्छा का अभाव हो जाय सो तप है। तप तो वही है जो निर्जनवन अर पर्वतनिका भयंकर गुफा जहां भूत-राक्षसादिकनिके अनेक विकार प्रवर्तें, अर सिंह-व्याघ्रादिकनिके भयङ्कर प्रचार होय रहें, अर कोटयां वृक्षनिकरि अन्धकार होय रह्या, अर जहां सर्प अजगर रीछ चीता इत्यादिक भयङ्कर दुष्टतिर्यंचनिका

हू अपना नाहीं होय है। यातैं यथेष्टविधि करि याहू पुष्ट करना योग्य नाहीं, कृश करने योग्य है, तो हू यो गुण-रत्ननिके संचयको कारण है। शरीर विना रत्नत्रयधर्म नाहीं होय है। सेवक की ज्यों योग्य भोजन देय यथाशक्ति जिनेन्द्रका मार्ग तैं विरोधरहित कायक्लेशादि तप करना योग्य है। तप विना इन्द्रियनिकी विषयनि में लोलुपता घटै नाहीं। तप विना त्रैलोक्यका जीतनेवाला कामकूं नष्ट करनेकूं समर्थता होय नाहीं। तप विना आत्माकूं अचेत करनेवाली निद्रा जीती जाय नाहीं। अर तप विना शरीरका सुखिया स्वभाव मिटै नाहीं। जो तप के प्रभावतैं शरीरकूं साधि राख्या होय तो क्षुधा तृषा शीत उष्णादिक परिषह आये कायरता उपजै नाहीं, संयमधर्मतैं चलायमान होय नाहीं। तप है सो कर्म की निर्जरा का कारण है। यातैं तप ही करना श्रेष्ठ है।

अपनी शक्तिकूं नाहीं छिपाय करिकैं जैसें जिनेन्द्र के मार्गतैं विरोधरहित होय, तैसें तप करो। तपनाम सुभट का सहाय विना ये अपना श्रद्धान ज्ञान आचरणरूप धनकूं काम क्रोध प्रमादादिक लुटेरे एक क्षण में लूटि लेवेंगे, तदि रत्नत्रयसंपदाकरि रहित चतुर्गतिरूप संसार में दीर्घकाल भ्रमण करोगे। यहांतैं जैसें वात पित्त कफ ये त्रिदोष विपरीत होय रोगादिक नाहीं उपजावैं तैसें तप करनां उचित है। समस्ततैं प्रधान तप जो दिगम्बरपणा

अल्पकाल निद्रा लेना, दन्तनिकूं अंगुलीकरि हू नाहीं धोवना, अर एक बार भोजन, खड़ा भोजन, रसनीरस स्वादकूं छांडि भोजन करैं, ऐसे अट्ठाईस मूलगुण अखंड पालना सो बड़ा तप है। इन मूलगुणनि के प्रभावतैं घातियाकर्मनिका नाशकरि केवलज्ञानकूं प्राप्त होय मुक्त हो जाय है। यातैं भो ज्ञानीजन हो! धर्मको अंग यो तप है। याकी निर्विघ्न प्राप्ति के अर्थि याहीका स्तवन पूजनादिककरि योका महाअर्घ उतारण करो। यातैं दूरि अर अत्यन्त परोक्ष हू मोक्ष तुम्हारे अतिनिकटताकूं प्राप्त होय हैं। ऐसैं शक्तितस्त्यागनामा सप्तमी भावनाका वर्णन किया ॥ ७ ॥

८. साधु समाधि भावना

साधुसमाधिनामा अष्टमी भावनाकूं कहै हैं। जैसे भण्डारमें लगी हुई अग्निकूं गृहस्थ है सो अपना उपकारक वस्तुका नाश जानि अग्निकूं बुझाइये है, क्योंकि अनेक वस्तुकी रक्षा होना बहुत उपकारक है, तैसैं अनेक व्रत-शीलादि अनेक गुणनिकरि सहित जो व्रती संयमी तिनके कोऊ कारणतैं विघ्न प्रगट होवैं, विघ्नकूं दूरिकरि व्रत शीलकी रक्षा करना सो साधुसमाधि है। अथवा गृहस्थके अपने परिणामकूं बिगाडनेवाला मरण आ जाय उपसर्ग आ जाय, रोग आ जाय, इष्ट वियोग हो जाय,

संचार होय रहा ऐसे महा विषमस्थाननिमें भयरहित हुआ ध्यान-स्वाध्याय में निराकुल हुवा तिष्ठै सो तप है। अर आहारका लाभ-अलाभ में समभावके धारक, मीठा खारा कडवा कषायला-ठंडा ताता सरस नीरस भोजन जलादिक में लालसारहित, संतोषरूप अमृतका पान करते, आनन्द में तिष्ठै सो तप है। जो दुष्ट देव, दुष्ट मनुष्य, दुष्ट तिर्यंचनिकरि किये घोर उपसर्गनिकूं आवते कायरता छांडि कंपायमान नाहीं होना होना सो तप है। जातैं चिरकालका संचय किया कर्म निर्जरै सो तप है। बहुरि जो दुर्वचन कहनेवाले में, ताडन मारन अग्नि में ज्वालनादि उपद्रव करने वाले में द्वेषबुद्धिकरि कलुष परिणाम नाहीं करना, अर स्तुति-पूजनादि करनेवाले में राग भाव नाहीं उपजाना सो तप है।

बहुरि पंच महाव्रतनिका, अर पंच समितिका पालन, अर पंच इन्द्रियनिका निरोध करना, अर छह आवश्यकका समय की समय करना, अर अपने मस्तक के डाढी-मूंछ के केशनिकूं अपने हस्ततैं उपवासका दिनमें उपाडना, दोय महीना पूर्ण भए उत्कृष्ट लोंच है, मध्यम तीन महीने गये लोंच करै, जघन्य चार महीने गये लोंच करै है सो लोंच करना हू तप है। अन्य भेषीनिकी ज्यों रोजीना केश नाहीं उपाडै है, शीतकाल ग्रीष्मकाल वर्षाकालमें नग्न रहना अर स्नानका नाहीं करना

अल्पकाल निद्रा लेना, दन्तनिकूं अंगुलीकरि हू नाहीं धोवना, अर एक बार भोजन, खड़ा भोजन, रसनीरस स्वादकूं छांडि भोजन करै, ऐसे अट्ठाईस मूलगुण अखंड पालना सो बड़ा तप है। इन मूलगुणनि के प्रभावतैं घातियाकर्मनिका नाशकरि केवलज्ञानकूं प्राप्त होय मुक्त हो जाय है। यातैं भो ज्ञानीजन हो! धर्मको अंग यो तप है। याकी निर्विघ्न प्राप्ति के अर्थि याहीका स्तवन पूजनादिककरि यांका महाअर्घ उतारया करो। यातैं दूरि अर अत्यन्त परोक्ष हू मोक्ष तुम्हारे अतिनिकटताकूं प्राप्त होय है। ऐसैं शक्तितस्त्यागनामा सप्तमी भावनाका वर्णन किया ॥ ७ ॥

८. साधु समाधि भावना

साधुसमाधिनामा अष्टमी भावनाकूं कहै हैं। जैसे भण्डारमें लगी हुई अग्निकूं गृहस्थ है सो अपना उपकारक वस्तुका नाश जानि अग्निकूं बुझावै है, क्योंकि अनेक वस्तुकी रक्षा होना बहुत उपकारक है, तैसैं अनेक व्रत शीलादि अनेक गुणनिकरि सहित जो व्रती संयमी तिनकै कोऊ कारणतैं विघ्न प्रगट होतैं, विघ्नकूं दूरिकरि व्रत शीलकी रक्षा करना सो साधुसमाधि है। अथवा गृहस्थकै अपने परिणामकूं बिगाडनेवाला मरण आ जाय उपसर्ग आ जाय, रोग आ जाय, इष्ट वियोग हो जाय,

संचार होय रह्या ऐसे महा विषमस्थाननिमें भयरहित हुआं ध्यान-स्वाध्याय में निराकुल हुआ तिष्ठै सो तप है। जो आहारका लाभ-अलाभ में समभावके धारक, मीठा खाटा कडवा कषायला ठंडा ताता सरस नीरस भोजन जलादिक में लालसारहित, संतोषरूप अमृतका पान करते, आनन्द में तिष्ठै सो तप है। जो दुष्ट देव, दुष्ट मनुष्य, दुष्ट तिर्यंचनिकरि किये घोर उपसर्गनिकूं आवते कायरता छांडि कंपायमान नाहीं होना होना सो तप है। जातैं चिरकालका संचय किया कर्म निर्जरै सो तप है। बहुरि जो कुवचन कहनेवाले में, ताडन मारन अग्नि में ज्वालनादि उपद्रव करने वाले में द्वेषबुद्धिकरि कलुष परिणाम नाहीं करना, अर स्तुति-पूजनादि करनेवाले में राग भाव नाहीं उपजाना सो तप है।

बहुरि पंच महाव्रतनिका, अर पंच समितिका पालन अर पंच इन्द्रियनिका निरोध करना, अर छह आवश्यक समय की समय करना, अर अपने मस्तक के डाढ़ी-मूंछ के केशनिकूं अपने हस्ततैं उपवासका दिनमें उपाड़ना, दो महीना पूर्ण भए उत्कृष्ट लोंच है, मध्यम तीन महीने गये लोंच करै, जघन्य चार महीने गये लोंच करै है सो लोंच करना हू तप है। अन्य भेषीनिकी ज्यों रोजीना केश नाहीं उपाड़ै है, शीतकाल ग्रीष्मकाल वर्षाकालमें नग्न रहना अर स्नानका नाहीं करना, अर भूमिशयनका

अल्पकाल निद्रा लेना, दन्तनिकूं अंगुलीकरि हू नाहीं धोवना, अर एक बार भोजन, खड़ा भोजन, रसनीरस स्वादकूं छांडि भोजन करै, ऐसे अट्ठाईस मूलगुण अखंड पालना सो बड़ा तप है। इन मूलगुणनि के प्रभावतैं घाति-याकर्मनिका नाशकरि केवलज्ञानकूं प्राप्त होय मुक्त हो जाय है। यातैं भो ज्ञानीजन हो! धर्मको अंग यो तप है। याही निर्विघ्न प्राप्ति के अर्थि याहीका स्तवन पूजना-दिककरि याका महाअर्घ उतारण करो। यातैं दूरि अर अत्यन्त परोक्ष हू मोक्ष तुम्हारे अतिनिकटताकूं प्राप्त होय है। ऐसैं शक्तितस्त्यागनामा सप्तमी भावनाका वर्णन किया॥ ७॥

८. साधु समाधि भावना

साधुसमाधिनामा अष्टमी भावनाकूं कहै हैं। जैसे भण्डारमें लगी हुई अग्निकूं गृहस्थ है सो अपना उपकारक वस्तुका नाश जानि अग्निकूं बुझाइये है, क्योंकि अनेक वस्तुकी रक्षा होना बहुत उपकारक है, तैसैं अनेक व्रत-शीलादि अनेक गुणनिकरि सहित जो व्रती संयमी तिनके कोऊ कारणतैं विघ्न प्रगट होतैं, विघ्नकूं दूरिकरि व्रत शीलकी रक्षा करना सो साधुसमाधि है। अथवा गृहस्थके अपने परिणामकूं बिगाडनेवाला मरण आ जाय उपसर्ग आ जाय, रोग आ जाय, इष्ट वियोग हो

संचार होय रहा ऐसे महा विषमस्थाननिमें भयरहित हुआ ध्यान-स्वाध्याय में निराकुल हुवा तिष्ठै सो तप है। जो आहारका लाभ-अलाभ में समभावके धारक, मीठा खाटा कडवा कषायला ठंडा ताता सरस नीरस भोजन जलादिक में लालसारहित, संतोषरूप अमृतका पान करते, आनन्द में तिष्ठै सो तप है। जो दुष्ट देव, दुष्ट मनुष्य, दुष्ट तिर्यंचनिकरि किये घोर उपसर्गनिकूं आवते कायरता छांडि कंपायमान नाहीं होना होना सो तप है। जातैं चिरकालका संचय किया कर्म निर्जरै सो तप है। बहुरि जो दुवचन कहनेवाले में, ताडन मारन अग्नि में ज्वालनादि उपद्रव करने वाले में द्वेषबुद्धिकरि कलुष परिणाम नाहीं करना, अर स्तुति-पूजनादि करनेवाले में राग भाव नाहीं उपजाना सो तप है।

बहुरि पंच महाव्रतनिका, अर पंच समितिका पालन, अर पंच इन्द्रियनिका निरोध करना, अर छह आवश्यकका समय की समय करना, अर अपने मस्तक के डाढी-मूंछ के केशनिकूं अपने हस्ततैं उपवासका दिनमें उपाडना, दोय महीना पूर्ण भए उत्कृष्ट लोंच है, मध्यम तीन महीने गये लोंच करै, जघन्य चार महीने गये लोंच करै है सो लोंच करना हू तप है। अन्य भेषीनिकी ज्यों रोजीना केश नाहीं उपाड़ै है, शीतकाल ग्रीष्मकाल वर्षाकालमें नग्न रहना अर स्नानका नाहीं करना, अर भूमिशयनकरि

चित्त आसक्त है, अर देहकूं अपना रूप जानै है तिनके मरणका भय है। सम्यग्दृष्टि देहतैं अपना स्वरूपकूं भिन्न जानि भयकूं प्राप्त नाहीं होय है। तिनके साधुसमाधि होय है। अर जो मरणके अवसरमें कदाचित् रोग-दुःखादिक आवै हैं सो सम्यग्दृष्टिके देहसूं ममत्व छुडावनेके अर्थि है, अर त्यागसंयमादिकके सन्मुख करने के अर्थि है, प्रमादकूं छुडाय सम्यग्दर्शनादिक चारि आराधनामें दृढ़ताके अर्थि है। अर ज्ञानी विचारै है जो जन्म धर्या है सो अवश्य मरैगा। जो कायर होहूँगा तो मरण नाहीं छांडैगा, अर धीर होय रहूंगा तो मरण नाहीं छांडैगा। तातैं दुर्गति का कारण जो कायरतातैं मरण ताकूं धिक्कार होहू। अब ऐसा साहसतैं मरूं जो देह मरि जाय अर मेरा ज्ञानदर्शनस्वरूपका मरण नाहीं होय। ऐसैं मरण करना उचित है। तातैं उत्साहसहित सम्यग्दृष्टिके मरण का भय नाहीं सो साधुसमाधि है।

बहुरि देवकृत मनुष्यकृत तिर्यंचकृत उपसर्गकूं होते जाके भय नाहीं होय, पूर्व उपजाया कर्म की निर्जरा ही मानै हैं ताकै साधुसमाधि है। बहुरि रोग का भयकूं नाहीं प्राप्त होय। जातैं ज्ञानी तो अपना देहकूं ही महारोग मानै है, जातैं निरन्तर क्षुधा-तृषादिक घोर रोगकूं उपजावने वाला शरीर है। बहुरि यो मनुष्य शरीर है सो वातपित्त कफादिक त्रिदोषमय है; असातावेदनीय कर्मके उदयतैं

अनिष्टसंयोग आ जाय यदि भयकूं नाहीं प्राप्त होना सो साधुसमाधि है। सम्यग्ज्ञानी ऐसा विचार करै है, हे आत्मन्! तुम अखंड अविनाशी, ज्ञान-दर्शनस्वभाव हो, तुम्हारा मरण नाहीं, जो उपज्या है सो विनशैगा, पर्याय का विनाश है, चैतन्य द्रव्यका विनाश नाहीं है। पांच इन्द्रिय अर मनबल वचनबल कायबल आयुबल आर उच्छ्वास ये दश प्राण हैं इनका नाशकूं मरण कहिये है। तुम्हारा ज्ञानदर्शन सुखसत्ता इत्यादिक भावप्राण हैं। तिनका कदाचित् नाश नाहीं है। तातैं देहका नाशकूं अपना नाश मानना सो मिथ्याज्ञान है।

भो ज्ञानिन्! हजारां कृमनिकरि भरया हाड़मांसमय दुर्गन्धयुक्त विनाशीक देहका नाश होवै तुम्हारे कहा भया है, तुम तो अविनाशी ज्ञानमय हो। या मृत्यु है सो बडा उपकारी मित्र है जो गल्या सड्या देहमेंतैं काढि तुमकूं देवादिकनिका उत्तमदेह धारण करावै है। मरण मित्र नाहीं होता तो इस देहतै केते काल बसता अर रोगका अर दुःखनिका भरया देहतैं कौन निकासता, अर समाधिमरणादिकरि आत्माका उद्धार कैसै होता? अर व्रततपसंयमका उत्तम फल, मृत्युनाम मित्रका उपकार विना कैसैं पावता, अर पापतैं कौन भयभीत होता। अर मृत्युरूप कल्पवृक्षबिना चारि आराधनाका शरण ग्रहण कराय संसाररूप कर्दमतैं कौन काढता? तातैं संसारमें जिनका

इस संसारमें परिभ्रमण करता अनन्तानन्तकाल व्यतीत भया। समस्त समागम अनेकबार पाया परन्तु सम्यक्समाधिमरणहू नाहीं प्राप्त भया हूँ। जो समाधिमरण एकबार हू होता तो जन्ममरणका पात्र नाहीं होता। संसार परिभ्रमण करता मैं भव-भवमें अनेक नवीन नवीन देह धारण किये। ऐसा कौन देह है जो मैं नाहीं धारण किया। अब इस वर्तमान देहमें कहा ममत्व करूं? अर मेरे भव-भवमें अनेक स्वजन कुटुम्बजनका हू सम्बन्ध भया है, अब ही स्वजन नाहीं मिले हैं। यातैं कौन २ स्वजनमें राग करूं? अर मेरे भव-भवमें अनेक बार राज-ऋद्धि हू ऊपजी। अब मैं इस तुच्छ सम्पदामें ममता कहा करूंगा? भव-भवमें मेरे अनेक माता पिता हू पालना करने वाले हो गये, अब ही नाहीं भये हैं। बहुरि मेरे भव-भवमें नारीपणा हू भया, अर मेरे भव-भवमें कामकी तीव्र लम्पटतासहित नपुंसकपणा हू भया, अर मेरे भव-भवमें अनेकबार पुरुषपणा हू भया, तो हू वेदके अभिमान-करि नष्ट होता फिरया। अर भव-भवमें अनेक जातिके दुःखहू प्राप्त भया। ऐसा संसारमें कोऊ दुःख नाहीं है जो मैं अनेकबार नाहीं पाया। अर ऐसा कोऊ इन्द्रियजनित सुख हू नाहीं है जो मैं अनेकबार नाहीं पाया। अर अनेकबार नरकमें नारकी होय २ असंख्यातकालपर्यंत प्रमाणरहित नानाप्रकारके दुःख भोगे, अर अनेक भव

त्रिदोषकी घटती बधतीतैं ज्वर कास स्वास अतिसार उदरशूल शिरशूल नेत्रका विकार वातादिपीडा होते ज्ञानी ऐसा विचार करै है:-जो यो रोग मेरे उत्पन्न भया है सो याकूं असातावेदनीय कर्मको उदय तो अंतरंग कारण है, अर द्रव्य क्षेत्र-कालादि बहिरंग कारण है। सो कर्मके उदयकू उपशम हुआं रोग का नाश होयगा। असाता का प्रबल उदयकूं होते बाह्य औषधादिक ही रोग मेटनकूं समर्थन नाहीं है। अर असाताकर्मके हरनेकूं कोऊ देव दानव मंत्र-तंत्र औषधादिक समर्थ हैं नाहीं। यातैं अब संक्लेशकूं छांडि समता ग्रहण करना। अर बाह्य औषधादिक हैं ते असाताके मन्द उदय होतैं सहकारी कारण हैं। असाताका प्रबल उदय होतैं औषधादिक बाह्यकारण रोग मेटनेकूं समर्थ नाहीं हैं। ऐसा विचारि असाताकर्मके नाशका कारण परमसमता धारणकरि संक्लेशरहित होय रहना, कायर नाहीं होना सो ही साधु समाधि है। बहुरि इष्टका वियोग होतैं अर अनिष्टका संयोग होतैं ज्ञानकी दृढतातैं जो भयकूं प्राप्त नाहीं होना सो साधुसमाधि है। जो पुरुष जन्मजरामरणकरि भयवान है अर सम्यग्दर्शनादि गुणनिकरि सहित है सो पर्यायका अन्तकालमें आराधना का शरणसहित अर भय कर रहित, देहादिक समस्तपरद्रव्यनिमें ममतारहित, हुआ व्रतसंयम-सहित समाधिमरणकी वांछा करै है।

इस संसारमें परिभ्रमण करता अनन्तानन्तकाल व्यतीत भया। समस्त समागम अनेकवार पाया परन्तु सम्यक्समाधिमरणहू नाहीं प्राप्त भया हूँ। जो समाधिमरण एक बार हू होता तो जन्ममरणका पात्र नाहीं होता। संसार परिभ्रमण करता मैं भव-भवमें अनेक नवीन नवीन देह धारण किये। ऐसा कौन देह है जो मैं नाहीं धारण किया। अब इस वर्तमान देहमें कहा ममत्व करूं? अर मेरे भव-भवमें अनेक स्वजन कुटुम्बजनका हू सम्बन्ध भया है, अब ही स्वजन नाहीं मिले हैं। यातैं कौन २ स्वजनमें राग करूं? अर मेरे भव-भवमें अनेक बार राज-ऋद्धि हू उपजी। अब मैं इस तुच्छ सम्पदामें ममता कहा करूंगा? भव-भवमें मेरे अनेक माता पिता हू पालना करने वाले हो गये, अब ही नाहीं भये हैं। बहुरि मेरे भव-भवमें नारीपणा हू भया, अर मेरे भव-भवमें कामकी तीव्र लम्पटतासहित नपुंसकपणा हू भया, अर मेरे भव-भवमें अनेकवार पुरुषपणा हू भया, तो हू वेदके अभिमान-करि नष्ट होता फिरया। अर भव-भवमें अनेक जातिके दुःखहू प्राप्त भया। ऐसा संसारमें कोऊ दुःख नाहीं है जो मैं अनेकवार नाहीं पाया। अर ऐसा कोऊ इन्द्रियजनित सुख हू नाहीं है जो मैं अनेकवार नाहीं पाया। अर अनेकवार नरकमें नारकी होय २ असंख्यातकालपर्यन्त प्रमाणरहित नानाप्रकारके दुःख भोगे, अर अनेक भव

तिर्यंचनिके प्राप्त होय असंख्यात अनन्तवार जन्ममरण करता, अनेकप्रकारके दुःख भोगता वारंवार परिभ्रमण किया।

अनेकवार धर्मवासनारहित मिथ्यादृष्टि मनुष्य हू भया। अर अनेकवार देवलोकनिमें हू प्राप्त भया। अर अनेक भवनिमें जिनेन्द्रकूं पूज्या। अनेक भवनिमें गुरु वन्दना हु करी अनेक भवनिमें मिथ्यादृष्टि हुआ, कपटतैं आत्मनिंदाहु करी। अनेक भवनिमें दुर्द्धर तप ▌धारण किया। अनेक भवनिमें भगवानका समवसरण हू में संचार किया। अर अनेक भवनिमें श्रुतज्ञान के अङ्गनिका हू पठन पाठनादिक अभ्यास किया, तथापि अनन्तकाल भव-निवासी ही रह्या। यद्यपि जिनेन्द्रकूं पूजना, गुरुनिकी वंदना तथा आत्मनिंदा करना तथा दुर्द्धर तपश्चरण करना समवसरण में जावना, श्रुतनिके अङ्गनिका अभ्यास करना, इत्यादिक ये कार्य प्रशंसायोग्य हैं, पापका विनाशक हैं, पुण्यका कारण हैं, तो हू सम्यग्दर्शन विना अकृतार्थ हैं। संसारपरिभ्रमणकूं नाहीं रोकि सके हैं। सम्यग्दर्शन विना समस्त आछी क्रिया पुण्यका बन्ध करनेवाली है। सम्यग्दर्शन सहित होय तदि संसारको छेद करैं। सो ही आत्मानुशासन में कह्या है—

शमबोधवृत्ततपसां पाषाणस्येव गौरवं पुंसः।
पूज्यं महामणेरिव तदेव सम्यक्त्वसंयुक्तम् ॥ १ ॥

अर्थ—पुरुषके शमभाव अर ज्ञान अर चारित्र अर

तर इनको महानपणो पाषाणका महानपणाके तुल्य है, अर ये ही जे शमबोध चारित्र अर तप जो सम्यक्त्व सहित होय तो महामणि की ज्यों पूज्य हो जाय।

भावार्थ—जगत्में मणि है सो हू पाषाण है, अर अन्य सामका पत्थर है सो हू पाषाण है, परन्तु पाषाण तो मण दोय मण हू बांधि ले जाय, बेचे तो हू एक पीसो उपजै, तातैं एक दिनहू पेट नाहीं भरे। अर मणि केई रती हू ले जाय बेचे, तो हजारां रुपया उपजै, समस्त जन्म का दारिद्र नष्ट होजाय। तैंसें शमभाव अर शास्त्रनिका ज्ञान अर चारित्रधारण अर घोर तपश्चरण ये सम्यक्त्व बिना बहुत काल धारण करे तो राज्य सम्पदा पावै तथा मन्दकषायके प्रभावतें देवलोकमें जाय उपजे। फिर चय-करि एकेंद्रियादिक पर्यायनिमें परिभ्रमण करे। अर जो सम्यक्त्वसहित होय तो संसारपरिभ्रमणका नाशकरि मुक्त होजाय। तातैं सम्यक्त्व बिना मिथ्यादृष्टि है सो जिनकूं पूजो वा गुरुवंदना करो, समवसरणमें जावो, श्रुतका अभ्यास करो, तप करो तो हू अनन्तकाल संसारवास ही करैगा। इस तीन भुवनमें सुख दुःखकी समस्त सामग्री यो जीव अनन्तबार पाई। कोऊ हूं दुर्लभ नाहीं। एक साधु-समाधि जो रत्नत्रयका लब्धिकूं निर्विघ्न परलोकताईं ले जाना है सो रत्नत्रयसहित हुआ देहकूं छांडै है जिनके साधुसमाधि होय तांका पावना ही दुर्लभ है।

तिर्यंचनिके प्राप्त होय असंख्यात अनन्तवार जन्ममरण करता, अनेकप्रकारके दुःख भोगता वारंवार परिभ्रमण किया।

अनेकवार धर्मशासनारहित मिथ्यादृष्टि मनुष्य हू भया। अर अनेकवार देवलोकनिमें हू प्राप्त भया। अर अनेक भवनिमें जिनेन्द्रकूं पूज्या। अनेक भवनिमें गुरु वन्दना हू करी अनेक भवनिमें मिथ्यादृष्टि हुआ, कपटतै आत्मनिंदाहू करी। अनेक भवनिमें दुर्द्धर तप हू धारण किया। अनेक भवनिमें भगवानका समवसरण हू में संचार किया। अर अनेक भवनिमें श्रुतज्ञान के अङ्गनिका हू पठन पाठनादिक अभ्यास किया, तथापि अनन्तकाल भवनिवासी ही रह्या। यद्यपि जिनेन्द्रकूं पूजना, गुरुनिकी वंदना तथा आत्मनिंदा करना तथा दुर्द्धर तपश्चरण करना समवसरण में जावना, श्रुतनिके अङ्गनिका अभ्यास करना, इत्यादिक ये कार्य प्रशंसायोग्य हैं, पापका विनाशक हैं, पुण्यका कारण हैं, सो हू सम्यग्दर्शन बिना अकृतार्थ हैं। संसारपरिभ्रमणकूं नाहीं रोकि सके हैं। सम्यग्दर्शन बिना समस्त भली क्रिया पुण्यका बन्ध करनेवाली है। सम्यग्दर्शन सहित होय तदि संसारको छेद करैं। सो ही आत्मानुशासन में कह्या है—

शमबोधवृत्ततपसां पाषाणस्येव गौरवं पुंसः।
पूज्यं महामणेरिव तदेव सम्यक्त्वसंयुक्तम् ॥ १ ॥

अर्थ—पुरुषके शमभाव अर ज्ञान अर चारित्र अर

तर इनको महानपणो पाषाणका महानपणाके तुल्य है, अर ये ही जे शमबोध चारित्र अर तप जो सम्यक्त्व सहित होय तो महामणि की ज्यों पूज्य हो जाय ।

भावार्थ—जगत्में मणि है सो [redacted] पाषाण है, अर अन्य भाखड़ा पत्थर है सो हू पाषाण है, परन्तु पाषाण तो मण दोय मण हू बांधि ले जाय, बेचै तो [redacted] एक पीसो उपजै, तातैं एक दिनहू पेट नाहीं भरे। अर मणि केई रती हू ले जाय बेचै, तो हजारां रुपया उपजै, समस्त जन्म का दारिद्र नष्ट होजाय। तैसैं शमभाव अर शास्त्रनिका ज्ञान अर चारित्रधारण अर घोर तपश्चरण ये सम्यक्त्व विना बहुत काल धारण करै तो राज्य सम्पदा पावै तथा मन्दकषायके प्रभावतैं देवलोकमें जाय उपजै। फिर चय-करि एकेंद्रियादिक पर्यायनिमें परिभ्रमण करै। अर जो सम्यक्त्वसहित होय तो संसारपरिभ्रमणका नाशकरि मुक्त होजाय। तातैं सम्यक्त्व विना मिथ्यादृष्टि है सो जिनकूं पूजो वा गुरुवंदना करो, समवसरणमें जावो, श्रुतका अभ्यास करो, तप करो तो हू अनन्तकाल संसारवास ही करैगा। इस तीन भुवनमें सुख दुःखकी समस्त सामग्री यो जीव अनन्तवार पाई। कोऊ हू दुर्लभ नाहीं। एक साधु-समाधि जो रत्नत्रयका लब्धिकूं निर्विघ्न परलोकताईं ले जाना है सो रत्नत्रयसहित हुआ देहकूं छांडै है तिनके साधुसमाधि होय ताका पावना ही दुर्लभ है। साधुसमाधि

है सो चतुर्गतिनिमें परिभ्रमणके दुःखका अभावकरि निश्चल स्वाधीन अनन्त सुखकूं प्राप्त करै है। जो पुरुष साधुसमाधि भावनाकूं निर्विघ्न प्राप्त होनेके अर्थि इस भावनाकूं भावता याका महान अर्घ उतारण करै है सो ही शीघ्र संसारसमुद्रकूं तिरि अष्टगुणनिका धारक सिद्ध होय है। ऐसैं साधुसमाधिनामा अष्टमी भावना वर्णन करी ॥ ८ ॥

९ वैयावृत्यकरण भावना

अब वैयावृत्तिनामा नवमी भावना वर्णन करिये है। कोढ अर उदरकी जो व्यथा आमवात, संग्रहणी, कठोदर, सफोदर, नेत्रशूल, कर्णशूल, शिरःशूल, दन्तशूल, तथा ज्वर, कास, स्वास, जरा इत्यादिक रोगनिकरि पीडित जे मुनि तथा श्रावक तिनकूं निर्दोष आहार औषधि वस्तिकादिक करि सेवा करना, तिनकी शुश्रूषा करना, विनय करना, आदर करना, दुख दूरि करने में यत्न करना सो समस्त वैयावृत्य है। जे तपकरि तप्त होय अर रोग करि युक्त जिनका शरीर होय, तिनके वेदना देखकर तिनके अर्थि प्रासुक औषधि तथा पथ्यादिककरि रोगका उपशम करना, सो नवमवैयावृत्य नाम गुण है। वैयावृत्य मुनीश्वरनिकै दश भेद करि दश प्रकार हैं। आचार्य उपाध्याय, तपस्वी, शैक्ष्य, ग्लान, गण, कुल, संघ, साधु, मनोज्ञ। इन दश प्रकार के मुनीश्वरनिके परस्पर वैयावृत्य

होय है। कायकी चेष्टा करि वा अन्य द्रव्यकरि दुःख-वेदनादिक दूर करनेमें व्यापार करिये, प्रवर्तन करिये सो वैयावृत्य है। इन दश प्रकारके मुनिनिका ऐसा स्वरूप जानना-जिनतैं स्वर्ग मोक्षके सुखके बीज जे व्रत तिनतैं आदर सहित ग्रहण करिकैं भव्यजीव अपने हितकै अर्थि आचरण करिए ते सम्यक्ज्ञानादि गुणनिके धारक आचार्य हैं।

भावार्थ-जिनतैं मोक्षके स्वर्ग के साधक व्रत आचरण करिये ते आचार्य हैं। जिनका समीपकूं प्राप्त होय आगमकूं अध्ययन करिये ते व्रत शील-श्रुतके आधार ऐसे उपाध्याय हैं। महान् अनशनादितपमें निष्ठ ते तपस्वी हैं। जे श्रुतके शिक्षणमें तत्पर, निरन्तर व्रतनिकी भावनामें तत्पर ते शैक्ष्य हैं। रोगादिककरि जाका शरीर क्लेशित होय सो ग्लान हैं। वृद्ध मुनिनिकी परिपाटीका होय सो गण है। आपकूं दीक्षा देने वाला आचार्यका शिष्य होय सो कुल है। च्यारि प्रकार के मुनिका समूह सो संघ है। चिरकालका दीक्षित होय सो साधु है। जो पण्डितपणाकरि, वक्ता पणाकरि, ऊंचा कुल करि, लोकनिमें मान्य होय, धर्म का गुरुकुलका गौरवपणाका उत्पन्न करने वाला होय सो मनोज्ञ है। अथवा असंयतसम्यग्दृष्टि हू संसार [illegible] अभाव-रूपपणातैं मनोज्ञ है।

इन दश प्रकार के मुनिनिकैं रोग आजाय

करि खेदित होय तथा श्रद्धानादि विगडि मिथ्यात्वादिक प्राप्त होय जाय, तो प्रासुक औषधि भोजनपान, योग्यस्थान, आसन, काष्ठफलक, तृणादिकनिका संस्तरादिकनिकरि, अर पुस्तक पीछिकादिक धर्मोपकरणकरि जो प्रतिकार उपकार करिये, तथा सम्यक्त्वमें फेरि स्थापना करिये इत्यादि उपकार सो वैयावृत्य है। अर जो बाह्य भोजनपान औषधादिक नाहीं सम्भवते होय, तो अपने कायकरके कफ तथा नासिकामल, मूत्रादिक दूरि करनेकरि तथा उनके अनुकूल आचरण करनेकरि वैयावृत्य होय है। इस वैयावृत्य संयम का स्थापन, ग्लानिको अभाव, अर प्रवचन में वात्सल्यपणो, अर सनाथपणो इत्यादि अनेक गुण प्रकट होय हैं। वैयावृत्य ही परम धर्म है। वैयावृत्य नाहीं होय तो मोक्षमार्ग विगडि जाय। आचार्यादिक हैं ते शिष्य मुनि तथा रोगी इत्यादिकका वैयावृत्य करनेतें बहुत विशुद्धता उचभाकूं प्राप्त होय हैं। ऐसे ही श्रावकादिक मुनिका वैयावृत्य करै तथा श्रावक श्राविकाका करैं। औषधिदानकरि वैयावृत्य करैं। अर भक्तिपूर्वक युक्तिकरि देहका आधार आहारदानकरि वैयावृत्य करैं। अर कर्मके उदयतैं दोष लगि गया होय ताका ढांकना तथा श्रद्धानसूं चलायमान भया होय ताकूं सम्यग्दर्शन ग्रहण करावना तथा जिनेन्द्रके मार्गसूं चलि गया होय ताकूं मार्गमें स्थापन करना इत्यादिक उपकारकरि वैयावृत्य है।

बहुरि जो आचार्यादि गुरु शिष्यकूं श्रुतका अङ्ग पढावें तथा व्रत संयमादिककी शुद्धिको उपदेश करैं सो शिष्यका वैयावृत्य है। अर शिष्यहू गुरुनिकी आज्ञा प्रमाण प्रवर्तना, गुरुनिका चरणनिका सेवन करैं सो आचार्यका वैयावृत्य है। बहुरि अपना चैतन्यस्वरूप आत्माकूं रागद्वेषादिक दोषनिकरि लिप्त नाहीं होने देना सो अपने आत्माका वैयावृत्य है। तथा अपने आत्माकूं भगवान्के परमागममें लगाय देना तथा दशलक्षणरूप धर्ममें लीन होना सो आत्मवैयावृत्य है। तथा काम क्रोध लोभादिकके अर इन्द्रियनिके विषयनिके आधीन नाहीं होना सो अपना आत्माका वैयावृत्य है। बहुरि इहां औरहू विशेष जानना—जो रोगी मुनि का तथा गुरुनिका प्रातःकाल अर आचरणमें शयन आसन कमंडलु पीछी पुस्तक नेत्रनिकूं देखि मयूरपिच्छिकातैं शोधना तथा अशक्त रोगी मुनिका आहार औषधिकरि संयमके योग्य उपचार करना तथा शुद्ध ग्रन्थके बांचनेकरि, धर्मका उपदेशकरि, परिणामकूं धर्ममें लीन करना तथा उठावना, बैठावना, मलमूत्र करवाना, करोट लिवाना इत्यादिकरि वैयावृत्य करै। तथा कोऊ साधु मार्गकरि खेदित होय तथा भील म्लेच्छ दुष्टराजा दुष्टतिर्यंचनिकरि उपद्रवकरि दुःखी होय, दुर्भिक्ष मारी व्याधि इत्यादिक उपद्रवकरि पीड़ा होनेतैं परिणाम कायर भया होय, ताकूं स्थान, देय,

कुशल पूछ करि आदरकरि, सिद्धान्ततैं शिक्षाकरि स्थिती-करण करना सो वैयावृत्य है ।

बहुरि जो समर्थ होय करिके हूँ अपना बलवीर्यकूं छिपाय वैयावृत्य नाहीं करै है सो धर्मरहित है । तीर्थंकर-निकी आज्ञा भङ्ग करि, श्रुतकरि उपदेश्या धर्मकी विराधना करी, आचार बिगाड्या, प्रभावना नाएं करी, धर्मात्मा की आपदाहू में उपकार नाहीं किया, तदि धर्मतैं पराङ्मुख भया । अर जाके ऐसा परिणाम होय जो अहो मोह अग्निकरि दग्ध होता जगतमें एक दिगम्बर मुनि ज्ञानरूप जलकरि मोहरूप अग्निकूं बुझाय आत्मकल्याणकूं करै हैं, धन्य हैं जे कामकूं मारि, रागद्वेष का परिहार करि, इन्द्रियनिकूं जीत आत्माके हित में उद्यमी भये हैं, ये लोकोत्तर गुणनिके धारक हैं मेरे ऐसे गुणवंतनिका चरण निरन्तर ही शरण होहू ऐसे गुणनिमें परिणाम वैयावृत्यतैं ही होय हैं । अर जैसे जैसे गुणनिमें परिणाम रचै, तैसैं तैसैं श्रद्धान बधै है । श्रद्धान बधै तदि धर्ममें प्रीति बधै, तदि धर्मके नायक अरहन्तादिक पंच परमेष्ठी के गुणनिमें अनुरागरूप भक्ति बधै है । कैसीक भक्ति होय है जो माया चार रहित मिथ्यात्वरहित, भोगनिकी बांछारहित, अर मेरु की ज्यों निष्कंप अचल ऐसी जिनभक्ति जाके होय ताके संसार के परिभ्रमण का भय नाहीं रहै है । सो भक्ति धर्मात्मा की वैयावृत्यतैं होय है ।

बहुरि पंच महाव्रतनिकरि युक्त अर [illegible]
रहित रागद्वेषका जीतनेवाला श्रुतज्ञानरूप रत्ननिकरि [illegible]
ऐसा पात्रका लाभ वैयावृत्य करनेवालेकै होय है। जो
रत्नत्रयधारी का वैयावृत्य किया सो रत्नत्रय [illegible]
जोडर्यांथि आपकूं अर अन्यकूं मोक्ष [illegible]
बहुरि वैयावृत्य अन्तरंग बहिरंग दोऊ [illegible]
कर्मकी निर्जराका प्रधान कारण है। [illegible]
वैयावृत्य कीयो सो समस्त संघको, [illegible]
कियो, भगवानकी आज्ञा पाली, [illegible]
संयमकी रक्षा, शुभध्यानकी वृद्धि, [illegible]
किया। रत्नत्रय की रक्षा अर [illegible] किया,
निर्विचिकित्सा गुणकूं प्रकट किया [illegible]
प्रभावना करी। धन खर्च देना सुगम है [illegible] टहल
करना दुर्लभ है। अन्यका [illegible]
करना, इत्यादिक गुणनिके प्रभावतैं [illegible] प्रकट
बन्ध करै है। यो वैयावृत्य [illegible] है, ऐसी
जिनेंद्रकी शिक्षा है। जो कोऊ [illegible] वैयावृत्य
करै है सो सर्वोत्कृष्ट निर्वाणकूं [illegible] बहुरि जो अर
सामर्थ्यप्रमाण छःकायके जीवनिके [illegible]
ताके समस्त प्राणीनिका वैयावृत्य [illegible] ऐसे
नाम नवमी भावना वर्णन किया।

१० अरहन्त भक्ति भावना

अब अरहन्तभक्ति नाम दशमी भावना वर्णन करें हैं। जो मनवचनकाय करिकें जिन ऐसे दोय अचर सदाकाल स्मरण करै है, सो अरहन्तभक्ति है।

भावार्थ—अरहन्तके गुणनिमें अनुराग सो अरहंत भक्ति है। जो पूर्वजन्ममें षोडशकारण भावना भाई है सो तीर्थङ्कर होय अरहन्त होय है। ताके तो षोडशकारण नाम भावनातैं उपज्या अद्भुत पुण्य, ताके प्रभावतैं गर्भ में आवनेके छह महीने पहली इन्द्र की आज्ञातैं कुबेर है सो बारहयोजन लम्बी, नवयोजन चौडी रत्नमय नगरी रचै है। तिसके मध्य राजाके रहने का महलनिका वर्णन, अर नगरीकी रचना, अर बड़े द्वार, अर कोट खाई परकोट इत्यादिक रत्नमई जो कुबेर रचै है ताकी महिमा तो कोऊ हजार जिह्वानिकरि वर्णन करनेकू समर्थ नाहीं है। तहां तीर्थङ्करकी माताका गर्भका शोधना अर रुचकद्वीपादि में निवास करनेवाली छप्पन कुमारिका देवी माता की नाना प्रकार की सेवा करने में सावधान होय हैं। अर गर्भ के आवनेके छह महीना पहली प्रभात, मध्याह्न अर अपराह्न एक-एक काल में आकाशतैं साढा तीनकोटि रत्ननिकी वर्षा कुबेर करै है। अर पाछैं गर्भ में आवतैं ही इन्द्रादिक च्यार निकायके देवनिका आसन कम्पायमान होनेतैं

च्यारि प्रकार के देव आय, नगरकी प्रदक्षिणा देय, माता पिता की पूजा सत्कारादिकरि अपने स्थान जाय हैं।

अर भगवान तीर्थङ्कर स्फटिकमणिका पिटारासमान मलादिरहित माताका गर्भमें तिष्ठै हैं। अर कमलवासिनी छह देवी अर छप्पन रुचिकद्वीपमें वसने वाली अर और अनेक देवी माताकी सेवा करै हैं। अर नव महीना पूर्ण होते उचित अवसर में जन्म होते ही च्यारों निकायके देवनिका आसन कम्पायमान होना, अर वादित्रनिका अकस्मात् वाजनेतैं जिनेन्द्रका जन्म जानि, तहां [illegible] सौधर्म नामा इन्द्र लक्षयोजन प्रमाण ऐरावत हस्ती ऊपरि चढ़ि, अपना सौधर्म स्वर्गका इकतीसमा पटल में अठारमां श्रेणीबद्ध नाम विमानतैं असंख्यातदेव अपने परिकरनिकरि सहित, साढ़ा बारा कोडिजातिका वादित्रनिका मिष्ट ध्वनि अर असंख्यात देवनिका जयजयकार शब्द, अर अनेक ध्वजा अर उत्सवसामग्री अर कोट्यां अप्सरानिका नृत्यादिक उत्सव, अर कोट्यां गंधर्वदेवनिका गावने करि सहित, असंख्यात योजन ऊंचा इहांतैं इन्द्र का रहनेका पटल, अर असंख्यातयोजन तिर्यक् दक्षिणदिशामें है। तहां ते जंबूद्वीपपर्यंत असंख्यातयोजन उत्सव करते आय नगरकी प्रदक्षिणा देय, इन्द्राणी प्रसूतिगृहमें जाय, माताकूं मायानिद्राके वशिकरि, वियोग के दुःख के भयतैं देवत्वशक्तितैं [illegible] और रचि,

भक्तितैं न्याय इन्द्रकूं सौंपै है। तिसकालमैं देखता इन्द्र तृप्तताकूं नाहीं प्राप्त होता, हजार नेत्र रचिकरि देखै है। फिर तहां ईशानादिक स्वर्गनिके इंद्र अर भवनवासी व्यन्तर ज्योतिषीनिके इंद्रादिक असंख्यात देव अपनी अपनी सेना वाहन परिवार सहित आवैं हैं। तहां सौधर्म इंद्र ऐरावत हस्ती ऊपरि चढ्या भगवानकूं गोद में लेय चालैं। तहां ईशानइंद्र छत्र धारण करैं, अर सनत्कुमार महेंद्र चमर ढारते अन्य असंख्यात अपने अपने नियोग में सावधान बड़ा उत्सवतैं, मेरुगिरिका पांडुकवनमैं पांडुक शिला ऊपरि अकृत्रिम सिंहासन है, तिस ऊपरि जिनेंद्रकूं पधराय है। अर पांडुकवनतैं क्षीरसमुद्र पर्यंत दोऊ तरफ देवोंकी पंकति बंध जाय है।

क्षीरसमुद्र मेरु की भूमितैं पांच कोड दस लाख साढा गुनचास हजार योजन परै है। तिस अवसर में मेरु की चूलिकातैं दोऊ तरफ मुकुट कुण्डल हार कंकणादि अद्भुत रत्ननिके आभरण पहरैं देवनिकी पंक्ति मेरुकी चूलिकातैं क्षीरसमुद्र पर्यन्त श्रेणी बंधे हैं, अर हाथूं हाथ कलश सौंपै है। तहां दोऊ तरफ इन्द्रके खड़े रहने के अन्य दोय छोटे सिंहासन ऊपरि सौधर्म ईशान इन्द्र कलश लेय अभिषेक एक हजार आठ कलशनिकरि करै है। तिन कलशनिका मुख एक योजनका, उदर चारि योजन चौड़ा, आठ योजन ऊंचा, तिन कलशनितैं निकसी धारा भगवान

के वज्रमय शरीर ऊपरि पुष्पनिकी वर्षा समान बाधा नाहीं करै है। अर पाछे इन्द्राणी कोमल वस्त्रतैं पूंछ अपना जन्मकूं कृतार्थ मानती स्वर्गतैं ल्याये रत्नमय समस्त आभरण वस्त्र पहरावैं हैं। तहां अनेकदेव अनेक उत्सव विस्तारे हैं। तिनकूं लिखनेकूं कोऊ समर्थ नाहीं। फिर मेरुगिरतैं पूर्ववत् उत्सव करते जिनेन्द्रकूं ल्याय मातांकूं समर्पण कर इन्द्र वहां ताण्डवनृत्यादिक जो उत्सव करै है तिन समस्त उत्सवनिकूं कोऊ असंख्यातकालपर्यन्त कोटि जिह्वानिकरि वर्णन करनेकूं समर्थ नाहीं है।

जिनेन्द्र जन्मतैं ही तीर्थङ्कर प्रकृतिके उदयके प्रभावतैं दश अतिशय जन्मते लिये ही उपजैं हैं। पसेवरहित शरीर होय, मल मूत्र कफादिक रहितपना, अर शरीर में दुग्धवर्ण रुधिर, समचतुरस्रसंस्थान, वज्रऋषभनाराच संहनन, अद्भुत अप्रमाण रूप, महासुगन्धशरीर, अप्रमाण बल, एक हजार आठ लक्षण, प्रियहितमधुर वचन ये समस्त पूर्वजन्ममें षोडशकारण भावना भाई ताका प्रभाव है। बहुरि इन्द्र अंगुष्ठमें स्थाप्या अमृत ताकूं पान करता, माताका स्तनमें उपज्या दुग्धपान नाहीं करै है। फिर अपनी अवस्थाके समान बने देवकुमारनिमें क्रीडा करते बुद्धिकूं प्राप्त होय है। अर स्वर्ग लोकतैं आये आभरण वस्त्र भोजनादिक मनोवांछित देव ल्यावैं सामता रात्रि दिन हाजिर रहे हैं। पृथ्वीलोकका भोजन आभरण वस्त्रादि

नाहीं अङ्गीकार करै हैं, स्वर्गतैं आये ही भोगैं हैं। बहुरि कुमारकाल व्यतीत करि, इन्द्रादिकनिकरि कीये अद्भुत उत्साह करि, भक्तिपूर्वक पिताकरि समर्पण किया राज्य भोगि अवसर पाय, संसार देह भोगनितैं विरागता उपजै, तदि अनित्यादि बारह भावना भावतेही लौकांतिकदेव आय वन्दना स्तवनरूप सम्बोधनादिक करैं हैं। अर जिनेन्द्र का विराग भाव होते ही च्यारि निकायके इन्द्रादिकदेव अपने आसन कम्पायमान होनेतैं जिनेन्द्र के तपका अवसर अवधिज्ञानतैं जानि, बड़े उत्सवतैं आय, अभिषेक करि, देवलोकके वस्त्राभरणतैं भक्तितैं भूषित करि, रत्नमयी पालकी रचि, जिनेन्द्रकूं चढाय, अप्रमाण उत्सव अर जयजयकार शब्दसहित तपके योग्य वनमें जाय उतारैं हैं। तहां वस्त्र आभरण समस्त त्यागै, देव अधर झेलि मस्तक चढावैं। अर पंचमुष्टीलोंच सिद्धनिकूं नमस्कारकरि करैं। तदि केशनिकूं महा उत्तम जाणि इन्द्र रत्नके पात्रमें धारणकरि क्षीरसमुद्रमें बड़ी भक्तितैं क्षेपै हैं।

जिनेन्द्र केतेक कालमें तपके प्रभावतैं शुक्लध्यानके प्रभावतैं क्षपक श्रेणीमें घातियाकर्मनिका नाश करि केवलज्ञानकूं उत्पन्न करैं हैं तदि अरहन्तपना प्रगट होय है। तदि केवलज्ञान रूप नेत्रकरि भूत भविष्यत् वर्तमान त्रिकालवर्ती समस्त द्रव्यनिकी अनन्तानन्त परिणतिसहित अनुक्रमवें एक समयमें युगपत् समस्तकूं जानै हैं देखै

हैं। तदि च्यारि निकायके देव ज्ञानकल्याण की पूजा स्तवन करि भगवानका उपदेशके अर्थि समवसरण अनेक रत्नमय रचैं हैं। तिस समवसरण की विभूतिका वर्णन कौन कर सकै? पृथ्वीतैं पांच हजार धनुष ऊंचा, जाके बीस हजार पैड़ी, तीं ऊपरि इन्द्रनीलमणिमय गोल भूमि बारह योजन प्रमाण, तिस ऊपरि अप्रमाण महिमासहित समवसरण रचना है। जहां समवसरण रचना होय है, अर भगवानका विहार होय है तहां अन्धेनिकूं दीखने लगि जाय, बहरे श्रवण करने लगि जांय, लूले चालने लगि जांय हैं। गूंगे बोलने लगि जांय हैं। वीतराग की अद्भुत महिमा है।

जाके धूलिशालादिक रत्नमय कोट, मानस्तंभ, अर वापिका, अर जलकी खातिका, अर पुष्पवाड़ी, फिर रत्नमय कोट, दरवाजें, नाट्यशाला, उपवन, वेदी, भूमि, फिर कोट फिर कल्पवृक्षनिका वन, रत्नमयस्तूप, फिर रत्नमय भूमि, फिर स्फटिकका कोटमें देवच्छन्द नाम एक योजन का मंडप, सर्व तरफ द्वादस सभा, तिनकरि, सेवित रत्नमय, तीन कटनी, गंधकुटी में सिंहासन ऊपरि च्यारि अंगुल अंतरीक्ष विराजमान भगवान अरहंत हैं। जिनकी अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतवीर्य, अनंतसुखमयी अंतरंग विभूतिकी महिमा कहनेकूं च्यारि ज्ञान के धारक गणधर समर्थ नाहीं, अन्य कौन कहि सकै? अर समवसरणकी विभूति ही वचनके अगोचर है। अर गंधकुटी तीसरी -

ऊपरी है। तहां चउसंठि चमर बत्तीस युगल देवनिके मुकुट कुंडल हार कडा भुजबंधादिक समस्त आभरण पहिरे ढालि रहे हैं। तीन छत्र अद्भुत कांति के धारक, जिनकी कांतितैं सूर्य चन्द्रमा मंदज्योति भासैं हैं, अर जिनकी देहका प्रभामंडलको चक्र बंध रहा जाकरि समवसरण में रात्रिदिन को भेद नाहीं रहै हैं, सदा दिवस ही प्रवर्तै है। अर महासुगंध—त्रैलोक्य में ऐसा सुगंध और नाहीं, ऐसी गंधकुटी के ऊपर देवनिकरि रच्या अशोकवृक्ष देखते ही समस्त लोकनिका शोक नष्ट हो जाय। अर कल्पवृक्षनिके पुष्पनिकी वर्षा आकाशतैं होय है। अर आकाश में साढाबाराकोटि जाति के वादित्रनिकी ऐसी मधुर ध्वनि होय है जिनके श्रवणमात्रतैं क्षुधातृषादिक समस्त रोग वेदना नष्ट हो जाय है। अर रत्नजडित सिंहासन सूर्य की कांतिकूं जीतै है।

बहुरि जिनेन्द्र की दिव्यध्वनिकी अद्भुत महिमा है। त्रैलोक्यवर्ती जीवनिके परम उपकार करने वाली मोहांधकारका नाश करै है अर समस्त जीव अपनी अपनी भाषा में शब्द अर्थ ग्रहण करै हैं, अर समस्त जीवनि के नाहीं रहै है, स्वर्ग–मोक्षका भा
ध्वनिकी महिमा वचन द्वारा
समर्थ नाहीं है। क
व्याघ्र अर गौ, म

जीवै वैरबुद्धि छांडि परस्पर मित्रताकूं प्राप्त होय हैं। वीतरागताकी अद्भुत महिमा है। जिनके असंख्यात देव जयजयकार शब्द करे हैं। जिनके निकटताकूं पाय करिकैं देवनिकरि रचे कलश भारी दर्पण ध्वजा ठोणा छत्र चमर बीजणा ये अचेतन द्रव्यहू लोकमें मंगलताकूं प्राप्त होय हैं। अर केवलज्ञान उत्पन्न भये पीछें दश अतिशय प्रगट होय है। चारों तरफ सौ सौ योजन सुभिक्षता, अर आकाशगमन, भूमिका स्पर्श नाहीं करै, अर कोऊ प्राणीका वध नाहीं होय, अर भोजनका अभाव, अर उपसर्ग का अभाव, अर चतुर्मुख दीखै, अर समस्त विद्या का ईश्वरपना, छायारहितपणा, अर नेत्र टिमकारैं नाहीं, अर केश नख बधैं नाहीं। ये दश अतिशय घातियाकर्म का नाशतैं स्वयं प्रगट होय हैं।

अर तीर्थंकर प्रकृतिका प्रभावतैं चौदह अतिशय देव-निकरि किये होय हैं। अर्द्धमागधी भाषा, समस्त जन समूहमें मैत्रीभाव, समस्त ऋतुके फूल फल पत्रादिकसहित वृक्ष होय हैं, पृथ्वी दर्पणसमान रत्नमयी तृण-कंटक-रज रहित होय हैं, शीतलमंद सुगंध पवन चलै है, समस्त जनोंके आनन्द प्रकट होय है, अनुकूल पवन, सुगंध जल की वृष्टिकरि भूमि रजरहित होय है, चरण धरैं तहां सात आगे, सात पीछे, एक बीच ऐसे पंदरा पंदराकरि दोयसो पच्चीस कमल देव रचैं हैं, आकाश निर्मल, दिशा निर्मल,

च्यार निकायके देवनिकरि जयजय शब्द, एक हजार आठारिसहित किरणनिका धारक, अपना उद्योतकरि सूर्यमण्डलकूं तिरस्कार करता धर्मचक्र आगे आगे चालै, अष्ट मङ्गलद्रव्य ये चौदह देवकृत अतिशय प्रकट होय हैं। क्षुधा तृषा जन्म जरा मरण रोग शोक भय विस्मय राग द्वेष मोह अरति चिंता स्वेद खेद मद निद्रा इन अष्टादश दोषनिकरि रहित अरहंत जिनको वंदना स्तवन ध्यान करो। या अरहंतभक्ति संसारसमुद्रका तारनेवाली निरन्तर चितवन करो। गुणका करनेवाला अरहंत ताका स्तवन करो। याका गुणनिके आश्रय तो अनंत नाम हैं। अर भक्तिका प्रेर्या इन्द्र भगवानका एक हजार आठ नामकरि स्तवन किया है। अर जे अन्य सामर्थ्यके धारक हैं ते हू अपनी शक्तिप्रमाण पूजन स्तवन नमस्कार ध्यान करो। अरहंत भक्ति संसारसमुद्रको तारने वाली है। सम्यग्दर्शनमें अर अरहंतभक्तिमें नामभेद है, अर्थभेद नाहीं है। अरहंतभक्ति नरकादिगतिकूं हरनेवाली है। या भक्तिको पूजनस्तवन करि अर्घ उतारण करे हैं सो देवांका सुख, फिर मनुष्यका सुख भोगि, अविनाशी सुखका धारक अक्षय अविनाशी सुखकूं प्राप्त होय है। ऐसे अरहंतभक्ति नाम दशमी भावना वर्णन करी ॥१०॥

११. आचार्य भक्ति भावना

अब आचार्य भक्ति नाम ग्यारमीभावना वर्णन करे

हैं। सो ही गुरुभक्ति है। धन्यभाग जिनका होय तिनके वीतराग गुरुनिके गुणनिमें अनुराग होय हैं। धन्यपुरुषनिके मस्तक ऊपरि गुरुनिकी आज्ञा प्रवर्तै है। आचार्य हैं सो अनेक गुणनिकी खानि हैं। श्रेष्ठतपका धारक हैं। यातैं इनका गुण मनविषै धारणकरि पूजिये, अर्घ उतारण करिए, पुष्पांजलि अग्रभागमें क्षेपिये, जो मेरे ऐसे गुरुनिका चरणनिका शरण ही होहु। कैसेक हैं आचार्य? जिनके अनशनादिक बारह प्रकारका उज्ज्वल तपनिमें निरंतर उद्यम है, अर छह आवश्यक क्रियामें सावधान हैं, अर पंचाचारके धारक हैं, अर दशलक्षणधर्म रूप है परिणति जिनकी, अर मनवचनकायकी गुप्ति करि सहित हैं, ऐसे छत्तीसगुणनिकरि युक्त आचार्य होय हैं। अर सम्यग्दर्शनाचारकूं निर्दोष धारे हैं। अर सम्यग्ज्ञानकी शुद्धताकरि युक्त हैं। अर त्रयोदशप्रकार चारित्रकी शुद्धताके धारक अर तपश्चरणमें उत्साहयुक्त, अर अपने वीर्यकूं नाहीं छिपावते बाईस परीषहनिके जीतनेमें समर्थ, ऐसे निरन्तर पंच आचारके धारक हैं। अंतरङ्ग बहिरङ्ग ग्रंथकरि रहित, निर्ग्रंथ मार्गके गमन करने में तत्पर हैं, अर उपवास बेला तेला पंचोपवास, पक्षोपवास, मासोपवास करने में तत्पर हैं। अर निर्जनवनमें अर पर्वतनिके दराडे, अर गुफानिके स्थानमें निश्चल शुभध्यानमें मनकूं धारैं हैं। अर शिष्यनिकी योग्यताकूं आछी रीतिकूं जानि दीक्षा

देनेमें अर शिक्षा करनेमें निपुण हैं, अर युक्तितैं नव प्रकार नयके जाननेवाले हैं, अर अपनी कायसूं ममत्व छांडि रात्रिदिन तिष्ठे हैं। संसारकूपमें पतन हो जानेतैं भयवान हैं। मनवचनकायकी शुद्धतायुक्त नासिकाका अग्रमें स्थापित किये हैं नेत्रयुगल जिन्ने ऐसे आचार्यकूं, समस्त अङ्गनिकूं, पृथ्वीमें नमाय मस्तक धारि वंदना करिये। तिन आचार्यनिका चरणनिकरि स्पर्श भई पवित्र रजकूं अष्ट द्रव्यनि करि पूजिये सो संसार परिभ्रमणका क्लेश पीडाकूं नष्ट करनेवाली आचार्य-भक्ति है।

अब यहां ऐसा विशेष जानना:—जो आचार्य हैं सो समस्तधर्मके नायक हैं। आचार्यनिके आधार समस्त धर्म है। यातैं एते गुणनिके धारक ही आचार्य होय। बड़ा राजानिका या राजाके मन्त्रीनिका या महान श्रेष्ठीनिका कुलमें उपज्या होय, अर जाके स्वरूपकूं देखते ही शांत परिणाम हो जांय, ऐसा मनोहररूपका धारक होय, जिनका उच्च आचार जगतमें प्रसिद्ध होय, पूर्वे गृहचारमें भी कदे हीण आचार निंद्य व्यवहार नाहीं किया होय, अर वर्तमान भोगसम्पदा छांडि विरक्तताकूं प्राप्त भया होय, अर लौकिक व्यवहार अर परमार्थके ज्ञाता होय, अर बुद्धिकी प्रबलता अर तपकी प्रबलताका धारक होय, अर संघ के अन्य मुनीश्वरनितैं ऐसा तप नाहीं बनि सकै तैसा तपका धारक होय, बहुत कालका दीक्षित होय, बहुत

काल गुरुनिका चरणसेवन किया होय, वचनका अतिशय-सहित होय, जिनका वचन-श्रवण करतें ही धर्ममें दृढ़ता, अर संशयका अभाव, अर संसार देहभोगतें विरागता आके निश्चल होय, सिद्धान्तसूत्रके अर्थका पारगामी होय, इन्द्रियनिका दमनकरि इसलोक परलोकसम्बन्धी भोग-विलासरहित, देहादिकमें निर्ममत्व होय, महाधीर होय, उपसर्गपरीषहनिकरि कदाचित् जाका चित्त चलायमान नाहीं होय। जो आचार्य ही चलि जाय तो सकल संघ भ्रष्ट होजाय, धर्मका लोप होजाय। स्वमत परमतका ज्ञाता होय, अनेकान्तविद्यामें क्रीडा करनेवाला होय, अन्यके प्रश्नादिकतें कायरतारहित तत्काल उत्तर देनेवाला होय। एकान्तपक्षकूं खंडन करि सत्यार्थधर्मकूं स्थापन करनेका जाका सामर्थ्य होय, धर्मकी प्रभावना करनेमें उद्यमी होय, गुरुनिके निकट प्रायश्चित्तादिकसूत्र पढि छत्तीस गुणनिका धारक होय है सो समस्त संघकी साखिदं गुरुनिकरि दिया आचार्यपद प्राप्त होय। एते गुणनिका धारक होय तिसहीकूं आचार्यपना होय है। एते गुणनि विना आचार्य होय तो धर्म तीर्थका लोप होजाय, उन्मार्गकी प्रवृत्ति होजाय, समस्तसंघ स्वेच्छाचारी होजाय, सूत्रकी परिपाटी अर आचारकी परिपाटी टूटि जाय।

बहुरि आचार्यपना का अन्य अष्ट गुण हैं तिनका धारक होय। आचारवान्, आधारवान्, व्यवहारवान्,

प्रकर्ता, अपायोपाय विदर्शी, अवपीडक, अपरिस्रावी, निर्यापक, ए आठ गुण हैं। तिनमें पंचप्रकारका आचार धारण करै ताकूं आचारवान कहिये। जीवादिकतत्त्व भगवान सर्वज्ञ वीतराग दिव्य निरावरण ज्ञानकरि प्रत्यक्ष देखि कह्या तिनमें श्रद्धानरूप परिणति सो दर्शनाचार है। स्वपरतत्त्वनिकूं निर्णय आगम अर आत्मानुभव करि जाननारूप प्रवृत्ति सो ज्ञानाचार है। हिंसादिक पंच पापनिका अभाव रूप प्रवृत्ति सो चारित्राचार है। अन्तरङ्ग बहिरङ्ग तपमें प्रवृत्ति सो तपाचार है परीषहादिक आए अपनी शक्तिकूं नाहीं छिपाय धीरतारूप प्रवृत्ति सो वीर्याचार है, तथा औरहू दश प्रकार स्थितिकल्पादिक आचारमें तत्पर हो। समितिगुप्त्यादिकनिका कथन करिये तो बहुत कथन वधि जाय। पंचप्रकार आचार, आप निर्दोष आचरै, अर अन्य शिष्यादिकनिकूं आचरण करावने में उद्यमी होय सो आचार्य है। आप हीणाचारी होय सो शिष्यनिकूं शुद्ध आचरण नाहीं कराय सकै। हीणाचारी होय सो आहार विहार उपकरण वस्तिका अशुद्ध ग्रहण कराय दे अर आपही आचारहीन होय सो शुद्ध उपदेश नाहीं करि सकै। तातैं आचार्य आचारवान ही होय ॥१॥

बहुरि जाके जिनेन्द्रका प्ररूप्या च्यार अनुयोगका आधार होय, स्याद्वाद विद्याका पारगामी होय, शब्दविद्या सिद्धान्तविद्याका पारगामी होय, प्रमाण नय निक्षेपकरि

स्वानुभवकरि भले प्रकार तत्त्वनिका निर्णय किया होय सो आचारवान है। जाके श्रुतका आधार नाहीं सो अन्य शिष्यनिका संशय तथा एकान्तरूप [illegible] तथा मिथ्याचरणकूं निराकरण नाहीं करि सकै। बहुरि अनन्तानन्तकालतैं परिभ्रमण करता जीवकै अतिदुर्लभ मनुष्यजन्मका पावना तामें हू उत्तम देश जाति कुल, इन्द्रिय-पूर्णता, दीर्घायु, सत्संगति, श्रद्धान, ज्ञान आचरण ये उत्तरोत्तर दुर्लभ संयोग पाय, सो अल्पज्ञानी गुरुके निकट वसनेवाला शिष्य, सो सत्यार्थ उपदेश नाहीं पावनेतैं यथार्थ आपका स्वरूप नाहीं पाय, संशयरूप हो जाय, तथा मोक्षमार्गकूं अतिदूर अतिकठिन जानि, रत्नत्रयमार्गतैं चलिजाय, तथा सत्यार्थ उपदेश विना विषय कषायनिमें उरझा मनकूं निकासनेमें समर्थ नाहीं होय, तथा रोगकृत वेदनामें तथा घोर उपसर्ग परीषहनितैं चल्या हुआ परिणामकूं श्रुतका अतिशयरूप उपदेशविना थांभनेकूं समर्थ नाहीं होय है। बहुरि मरण आजाय वदि संन्यासका अवसरमें आहार-पानका त्यागका यथा अवसर देशकाल सहाय सामर्थ्यका क्रमकूं समझे विना शिष्यका परिणाम चलि जाय वा आर्त्तध्यान होजाय तो सुगति बिगडि जाय, धर्मका अपवाद हो जाय, अन्य मुनि धर्ममें शिथिल होजाय, तो बडा अनर्थ है।

तथा यो मनुष्य आहारमय है, आहारतैं जीवै है, आहारहीकी निरन्तर वांछा करै है अर जब रोगके वशतैं

तथा त्याग करने, आहार छूटि जाय तदि दुःखकरि ज्ञान-चारित्रमें शिथिल होय, धर्मध्यानरहित हो जाय तौ बहुश्रुत गुरु ऐसा उपदेश करै जाकरि क्षुधा तृषाकी वेदना-रहित होय, उपदेशरूप अमृतकरि सींचा हुआ समस्त क्लेशरहित भया, धर्मध्यानमें लीन होजाय है। क्षुधा तृषा रोगादिककी वेदनारहित शिष्यकूं धर्मका उपदेशरूप अमृतका पान अर शिक्षारूप भोजनकरि, ज्ञानसहित गुरुही वेदनारहित करै। बहुश्रुतिका आधारविना धर्म रहै नाहीं। तातैं आधारवान आचार्य होय ताहीका शरण ग्रहण करना योग्य है। बहुरी जो शिष्य वेदनाकरि दुःखित होय ताके हस्त पाद मस्तकका दाबना, स्पर्शनादि करना, मिष्टवचन कहना इत्यादिक करि दुःख दूर करैं तथा पूर्वं जे अनेक साधु घोरपरीषह सहकरि आत्मकल्याण किया तिनकी कथा के कहनेकरि तथा देहतैं भिन्न आत्माका अनुभव करावनेकरि वेदनारहित करै। तथा भो मुने! अब, दुःख में धैर्य धारण करो, संसार में कौन २ दुःख नाहीं भोगे? अब वीतराग का शरण ग्रहण करोगे तो दुःखनिका नाश करि कल्याणकूं प्राप्त होवोगे इत्यादिक बहुत प्रकार कहि मार्गसूं नाहीं चलने देवै तातैं आधारवान गुरुनिही शरण योग्य है ॥२॥

बहुरि जो व्यवहार-प्रायश्चित्तसूत्रनिका ज्ञान होय। जातैं प्रायश्चित्तसूत्र आचार्य होने योग्य होय तिसहीकूं

हारी है और निके पढ़ने योग्य नाहीं। जो जिनआगमका ज्ञाता अर महाधैर्यवान प्रबलबुद्धिका धारक होय सो प्रायश्चित्त देवै है। अर द्रव्य क्षेत्र काल भाव, किया, परिणाम, उत्साह, संहनन, पर्याय जो दीक्षाका काल अर शास्त्रज्ञान, पुरुषार्थादिक आछी रीति जाणि, रागद्वेषरहित होय सो प्रायश्चित्त देवै है।

भावार्थ—जामें ऐसी प्रवीणता होय जो याकूं ऐसा प्रायश्चित्त दिये याका परिणाम उज्ज्वल होयगा, अर दोषका अभाव होयगा, व्रतनिमें दृढता होयगी, ऐसा ज्ञाता होय याके आहार की योग्यता अयोग्यताका ज्ञान होय, तथा या क्षेत्रमें ऐसा प्रायश्चित्त का निर्वाह होयगा या या क्षेत्रमें निर्वाह नाहीं होयगा तथा इस क्षेत्रमें वात पित्त कफ शीत उष्णताकी अधिकता है कि हीनता है कि समपना है, अथवा इस क्षेत्रमें मिथ्यादृष्टिनिकी अधिकता है कि मंदता है, तथा धर्मात्मानि की हीनता अधिकताकूं जाणि प्रायश्चित्तका निर्वाह देखै। बहुरि शीत उष्ण वर्षा कालकूं तथा अवसर्पिणी उत्सर्पिणीका तृतीय चतुर्थ पंचम कालादिक केआधीन प्रायश्चित्तका निर्वाह देखैं। बहुरि परिणाम देखैं तथा तपश्चरण में याके तीव्र उत्साह है कि मंद है वाकूं देखै। बहुरि संहननकी हीनता अधिकता तथा बलकी मंदता तीव्रता देखै। तथा ये बहुत कालका दीक्षित है कि नवीन दीक्षित है, तथा सहनशील है कि कायर है, सो

देखै। तथा बाल, युवा वृद्ध अवस्थाकूं देखे। बहुरि आगमका ज्ञाता है कि मंदज्ञानी है सो देखै। तथा पुरुषार्थी है कि निरुद्यमी है इत्यादिक का ज्ञाता होय, प्रायश्चित्त देवै। जैसे दोषरूप फिर आचार नाहीं करै अर पूर्वकृत दोष दूरि होय तैसे सूत्रके अनुकूल प्रायश्चित्त देवै। जो गुरुनिके निकट प्रायश्चित्तसूत्र शब्दतैं अर्थतैं पढ्या नाहीं औरनिकूं प्रायश्चित्त देवै है सो संसाररूप कर्दममें डूबै है, अर अपयशकूं उपार्जन करै है तथा उन्मार्गका उपदेशकरि सम्यक् मार्गका नाशकरि मिथ्यादृष्टि होय है। जो एते गुणका धारक होय ताकूं प्रायश्चित्तसूत्र पढाय गुरु अपना आचार्यपद दे हैं।

जो महाकुलमें उपज्या व्यवहार परमार्थ का ज्ञाता होय, कोऊ कालमेंहू अपने मूलगुणनिमें अतिचार नाहीं लगाया होय, च्यारि अनुयोगसमुद्रका पारगामी होय, धैर्यवान होय, कुलवान होय, परीषह जीतने में समर्थ होय, देवनिकरि कीया उपसर्गतैं हू जो चलायमान नाहीं होय, वक्तापना की शक्तिका धारक होय, वादीप्रतिवादीनिके जीतनेमें समर्थ होय, विषयनितैं अत्यन्त विरक्त होय, बहुतकाल गुरुकुल सेया होय, सर्व संघके मान्य होय, पहिले ही समस्त संघ जाकूं आचार्यपनाकी योग्यता जाणै सोही गुरुनिका दिया प्रायश्चित्त सूत्रका ज्ञाता होय आचार्यपना पावै, सो प्रायश्चित्त देवे। एते गुणनि विना

जैसे मूढ़ वैद्य देश काल प्रकृत्यादिक नाहीं जानै, तो रोगी कूं मारै है तैसें व्यवहार सूत्ररहितमूढ़ गुरू हू संसार में डुबोवै। तातें व्यवहारवान ही आचार्य होय हैं।

बहुरि आचार्य प्रकर्त्ता गुण संयुक्त होय हैं। संघमैं कोऊ रोगी होय, वा वृद्ध होय, अशक्त होय, कोऊ बाल होय, कोऊ संन्यास धारण किया होय तिनकी वैयावृत्त्य में युक्त किये जे मुनि ते टहल करैं ही परन्तु आप आचार्य हू संघके मुनीश्वरनिमें जो अशक्त होजाय ताका उठावना बैठावना, शयन करावना तथा मलमूत्रकफादिक तथा राधि रुधिरादिक शरीरतैं दूरि करना, धोवना, उठावना, प्रासुक भूमिमें स्थापना, धर्मोपदेश देना, धर्मग्रहण करावना, इत्यादिक आदरपूर्वक भक्तितैं वैयावृत्त्य करै। तिनकूं देखि समस्त संघके मुनि वैयावृत्त्यमें सावधान होय विचारै हैं:-अहो धन्य हैं ये गुरु भगवान् परमेष्ठी करुणानिधान जिनके धर्मात्मामें वात्सल्य हैं। हम निन्द्य हैं, आलसी होय रहे हैं, हमकूं होते इ सेवा करैं हैं। यह हमारा प्रमादीपना धिक्कारने योग्य है, बन्धका कारण है, ऐसा विचार समस्त संघ वैयावृत्त्य में उद्यमी होय है। जो आचार्य आप प्रमादी होय तो सकल संघ वात्सल्यरहित होजाय। तातैं आचार्यका कर्तृत्वगुण मुख्य है। समस्त संघको वैयावृत्त्य करनेका जाका सामर्थ्य होय सो आचार्य होय है। कोऊ हीणाचारी होय ताकूं शुद्ध आचार

ग्रहण करावै, कोऊ मन्दज्ञानी होय तिनकूं समभाय चारित्रमें लगावै, केइनिकूं प्रायश्चित्त देय शुद्ध करै, कोऊकूं धर्मोपदेश देय दृढता करै। धन्य है! आचार्य जिनके शरणे प्राप्त होगया तिनकूं मोक्षमार्ग में लगाय उद्धार करै हैं। यातैं आचार्यका प्रकर्त्ता नामा गुण प्रधान है ॥ ४ ॥

बहुरि अपायोपायविदर्शी नामा पांचमो गुण है। कोऊ साधु क्षुधा तृषा रोग वेदनाकरि पीड़ित हुवा क्लेशित परिणामरूप हो जाय, तथा तीव्र रागद्वेषरूप होजाय, तथा लज्जाकरि भयकरि यथावत् आलोचना नाहीं करै, तथा रत्नत्रय में उत्साह रहित होजाय, धर्ममें शिथिल हो जाय ताकूं अपाय मानि रत्नत्रय का नाश अर उपाय, रत्नत्रय की रक्षानिका प्रगट गुण दोष ऐसा दिखावै जो रत्नत्रयका नाश होनेतैं कंपायमान हो जाय, अर रत्नत्रयका नाशतैं अपना नाश अर नरकादि कुगति में पतन साक्षात् दिखावै, अर रत्नत्रय की रक्षातैं संसारतैं उद्धार होय अनन्त सुखकी प्राप्ति होय, सो अपायोपाय-विदर्शी नाम गुणका धारक आचार्य होय है। इहां उपदेश दिखाये कथन बहुत होजाय तातैं नाहीं लिख्या ॥ ५ ॥

अब उत्पीडक नाम छठा गुण कहिये है। कोऊ मुनि रत्नत्रय धारण करकै हू लज्जाकरि, भयकरि, अभिमान गौरवादिकरि अपनी आलोचना यथावत् शुद्ध नाहीं करै

तो आचार्य ताकूं स्नेहकी भरी, कर्णनिकूं मिष्ट अर हृदय में प्रवेश करनेवाली शिक्षा करैं जो हे मुने ! बहुत दुर्लभ रत्नत्रयका लाभ ताकूं मायाचारकरि नष्ट मति करो। माता पिता समान गुरुनिके निकट अपने दोष प्रगट करने में कहा लज्जा है ? अर वात्सल्यके धारक गुरु हू अपने शिष्यके दोष प्रगट करि शिष्यका अर धर्मका अपवाद नाहीं करावै है। तातैं शल्य दूरि करि आलोचना करो। जैसे रत्नत्रयकी शुद्धता अर तपश्चरणका निर्वाह होयगा तैसैं द्रव्य क्षेत्रकाल भावके अनुसार प्रायश्चित्त तुमकूं दिया जायगा। तातैं भय त्यागि आलोचना निर्दोष करहु। ऐसे स्नेह रूप वचन करिके जोहू माया शल्य नाहीं त्यागै तो तेजका धारक आचार्य शिष्यकी शल्यकूं जबरीतैं निकासै। जिस काल आचार्य शिष्यकूं पूछै हैं जो हे मुने ! ये दोष ऐसैं ही हैं सत्यार्थ कहो। तदि उनके तेज तपके प्रभावतैं जैसे सिंहकूं देखते ही स्याल खाया हुआ मांसकूं तत्काल उगलै है, तथा जैसे महान् प्रचण्ड तेजस्वी राजा अपराधीकूं पूछै तदि तत्काल सत्य कहता ही बणै, तैसैं शिष्यहू मायाशल्यकूं निकासै है। अर मायाचार नाहीं छांडे तो गुरु तिरस्कारके वचन हू कहै हैं हे मुने ! हमारे संघतैं निकसि जाहु, हमकरि तुम्हारे कहा प्रयोजन है। जो अपना शरीरादिक का मैल धोया चाहैगा, सो निर्मल जलकै भरे सरोवरकूं प्राप्त होयगा।

जो अपना महान रोगकूं दूरि किया चाहैगा सो प्रवीण वैद्यकूं प्राप्त होयगा। तैसैं जो रत्नत्रयरूप परमधर्मका अतीचार दूरि करि उज्ज्वलता किया चाहैगा सो गुरुनिका आश्रय करेगा। तुम्हारे रत्नत्रयकी शुद्धता करनेमें आदर नाहीं तातैं ये मुनिपणा व्रत धारण, नग्न होय क्षुधादि परीषह सहनेकी विडंबनाकरि कहा साध्य है। संवर निर्जरा तो कषायनिके जीतनेतैं है, मायाकषायका ही त्याग नाहीं किया तदि व्रत संयम मौन धारण वृथा है। नग्नता, अर परीषह सहनता मायाचारी का वृथा है। तिर्यंच हू परिग्रहरहित नग्न रहै ही है। यातैं तुम दूर भव्य हो, हमारे वंदनेयोग्य नाहीं हो। अर तुम्हारे परिणाम ऐसैं हैं जो हमारा दोष प्रगट होय तो हम निंद्य होय जावें, हमारा उच्चपणा घटि जाय, सो ऐसा मानना बंधका कारण है। श्रमण तो स्तुति निन्दामें समानपरिणामी होय हैं। ऐसे गुरु कठोर वचन कहि करके हू मायाचारादिक अभाव करावें। कैसा होय अवपीडक आचार्य? जो बलवान होय, उपसर्ग परीषह आये कायर नाहीं होय, प्रतापवान होय, जाका वचन कोऊ उल्लंघन करने समर्थ नाहीं होय, अर प्रभाववान होय जाकूं देखतेप्रमाण दोषका धारक साधु कांपने लगि जाय, जाकूं बडे २ विद्याके धारक नम्रीभूत होय वंदना करैं, जाकी उज्ज्वल कीर्ति विख्यात होय, जाकी कीर्ति सुनता ही जाके गुणनिमें दृढ श्रद्धा हो

वाय, आज्ञा वचन जगतमें देख्या विना ही दूरदेशनिमें प्रमाण करै, सिंहकी ज्यों निर्भय होय ऐसा अवपीड़क गुणका धारक गुरु होय, सो जैसें शिष्य का हित होय तैसें उपकार करै है। वैसें बालकका हितनैं चिंतवन करती माता रुदन करता हू बालककूं दाबकरि, मुख फाडि, जबरीतैं घृत-दुग्धादि पान करावै है, तैसे शिष्यका हितकूं चिंतवन करता आचार्य हू मायाशल्यसहित क्षपकका बलात्कार करि दोष दूर करै है। अथवा कटुक औषधि ज्यों पश्चात् हित करै है। जो जिह्वाकरिके मिष्ट बोले अर शिष्यकूं दोषतैं नाहीं छुड़ावै सो गुरु भला नाहीं। अर जो आचरण करि ताड़ना हू करि दोषनितैं भिन्न करै है सो गुरु पूजने योग्य है। यातैं अवपीडकगुणका धारक ही आचार्य होय है॥ ६॥

अब अपरिस्रावी गुणकूं कहैं हैं। जो शिष्य गुरुनिकूं दोष आलोचना करै सो दोष अन्यकूं गुरु प्रकाश नाहीं करै। जैसें तप्तायमान लोहकरि पीया जल सो बाह्य प्रकट नाहीं होय तैसें शिष्यकरि श्रवण किया दोष आचार्य हू किसीकूं नाहींजणावै है, सोही अपरिस्रावी नाम गुण है। शिष्य तो गुरुका विश्वास करके कहै, अर गुरु जो शिष्य का दोष प्रकट करै, अन्यकूं जनावै तो वह गुरु नाहीं, अधम है, विश्वासघाती है। कोऊ शिष्य अपना दोपकी प्रकटता जानि दुःखित होय आत्मघात करै है वा क्रोधी होय

रत्नत्रयका त्याग करै है, तथा गुरुकी दुष्टता जानि अन्य संघमें जाय तथा जैसें हमारी अवज्ञा करी तैसें तुम्हारी हू अवज्ञा करैगा ऐसें समस्त संघ में घोषणा प्रकट होय, समस्तसंघ आचार्यनिका प्रतीतिरहित होजाय, आचार्य सब के त्याज्य होजांय इत्यादिक बहुत दोष आवै। बहुत कहे कथनी वधि जाय, तातैं अपरिस्रावी गुणका धारक ही आचार्य होय है ॥७॥

अब आचार्य निर्यापक होय। जैसें नावकूं खेवटिया समस्त उपद्रवनिकूं टालि नावकूं पार उतारि ले जाय, तैसें आचार्यहू शिष्यकूं अनेक विघ्नसूं बचाय संसार समुद्रसे पार करै सो निर्यापक है ॥८॥ ऐसे आचारवान आदि आचार्यनिं अष्टगुणकूं धारण करतेनिके गुणनिमें अनुराग सो आचार्य-भक्ति है। ऐसें आचार्यनिके गुणनिकूं स्मरण करके आचार्य-निका स्तवन वंदना करता जो पुरुष अर्घ उतारण करै है सो पापरूप संसारकी परिपाटीकूं नष्टकरि अक्षयसुखकूं प्राप्त होय है, ऐसें वीतराग गुरु कहै हैं। ऐसे आचार्य भक्ति वर्णनकरी।११।

१२ बहुश्रुतभक्ति भावना

अब बहुश्रुतभक्ति नाम बारमी भावनाकूं कहै हैं। जो अंग-पूर्वादिकका ज्ञाता तथा च्यार अनुयोगनिका पारगामी, जो निरन्तर आप परमागमकूं पढ़ै, अन्य शिष्यनिकूं पढावै ते बहुश्रुती है। तथा जिनके श्रुतज्ञान ही दिव्यनेत्र हैं अर अपना अर परका हित करनेमें प्रवर्तते अर अपने जिनसिद्धान्त अर अन्य एकांतीनिके सिद्धान्तनि को विस्तारतैं जानने वाले,

स्याद्वादरूप परम विद्या के धारक तिनकी जो भक्ति सो बहुश्रुत भक्ति है। बहुश्रुतीकी महिमा कौन कहनेकूं समर्थ है। जे निरंतर श्रुतज्ञानका दान करै हैं ऐसेउपाध्याय तिनकी भक्ति विनयकरि सहित करै है ते शास्त्ररूप समुद्र का पारगामी होय हैं। जे अङ्ग पूर्व प्रकीर्णक जिनेन्द्रने वर्णन किये तिन समस्त जिनागमकूं निरन्तर पढ़ै पढावैं ते बहुश्रुती हैं। इहां प्रथम आचारांग तामैं अठारह हजार पदनिमें मुनिधर्मका वर्णन है। सूत्रकृताङ्ग का छत्तीस हजार पद हैं, तिनमें जिनेन्द्रके श्रुतके आराधन करनेकी विनयक्रियाका वर्णन है। स्थानांगका ब्यालीस हजार पदनिमें षट्द्रव्यनि का एकादि अनेक स्थानका वर्णन है। समवायांग एकलाख चौसठिहजार पदनिमें है तिनमें जीवादिक पदार्थनिका द्रव्य क्षेत्र काल भावके आश्रित समानता कावर्णन है। व्याख्या प्रज्ञप्ति अंगके दोयलच अठाईसहजार पदनिमें जीवका अस्ति नास्ति इत्यादि गणधरनि करि कीये साठिहजारपदनिमें वर्णन है। ज्ञातृधर्मकथांगके पांचलच छप्पनहजारपदनिमें गणधर निकरि कियेप्रश्ननिके अनुसार जीवादिकनिका स्वभावका वर्णन है। उपासकाध्ययननाम अङ्गके ग्यारह लच सत्तरहजार पदनिमें श्रावकके व्रतशील आचार क्रियाका तथा याका मन्त्रनिका उपदेशका वर्णन है। अन्तकृतदशांगके तेईसलच अट्ठाईसहजार पदनिमें एक २ तीर्थंकरकेतीर्थमें दश २ मुनीश्वर उपसर्गसहित निर्वाण प्राप्त भये तिनका कथन है। अनुत्तरोपपादकदशांग के बाणवैलच [illegible] निमें एक २ तीर्थंकर

दश २ मुनीश्वर महाभयङ्कर घोरउपसर्ग सहि देवनितैं पूजा पाय विजयादिक अनुत्तर विमाननि में उपजे तिनका वर्णन है। प्रश्नव्याकरणनामअङ्ग के त्र्यानवैलच पोडशसहस्र पदनिमें नष्ट मुष्टि लाभ अलाभ सुख-दुःख जीवित मरणादिकके प्रश्नका वर्णन है। विपाकसूत्रांगके एककोटि चौरासीलच पदनिमें कर्मनिका उदय उदीरणा सत्ताका वर्णन है। अर दृष्टिवाद नाम बारम अंग का पांच भेद है। परिकर्म, सूत्र,प्रथमानुयोग,पूर्व चूलिका- तिनमें परिकर्मकाहू पांचभेद है। तिनमें चन्द्र प्रज्ञप्तिके छह लच पांचहजारपदनिमें चन्द्रमाका आयु गति अर कलाकी हानिवृद्धि अर देवीविभव परिवारादिकका वर्णन है। अर सूर्य प्रज्ञप्तिके पांचलच तीन हजार पदनिमें सूर्यका आयु गति विभवा- दिकका वर्णन है। जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिके तीनलच पचीसहजार पदनि में जम्बूद्वीप सम्बन्धी क्षेत्र कुलाचल द्रह नदी इत्यादिकनिका निरूपण है। द्वीपसागरप्रज्ञप्तिके बावनलच छत्तीसहजार पदनि में असंख्यात द्वीप-समुद्रनि अर मध्यलोकके जिनभवननिका, अर भवनवासी व्यन्तर ज्योतिष्क देवनिके निवासनिका वर्णन है। व्याख्याप्रज्ञप्तिके चौरासी लच छप्पनहजार पदनिमें जीव पुद्गलादि द्रव्यका निरूपण है। ऐसे पंच प्रकार परिकर्म कहा।

अब दृष्टिवाद अङ्गका दूजा भेद सूत्रके अट्ठासी लच पदनि में जीव अस्तिरूप ही है, नास्तिरूप ही है, कर्त्ता ही है, भोक्ता ही है इत्यादि एकांतवादकरि कल्पित जीवका स्वरूपका वर्णन है। बहुरि दृष्टिवादका तीजाभेद प्रथमानुयोगके पांच हजार पदनि मेंत्रेसठि महापुरुषनिके चरित्रका वर्णन है।

अब दृष्टिवादअङ्गका चतुर्थभेदमें चौदहपूर्व हैं तिनमें उत्पादपूर्वके एककोटि पदनिमें जीवादिक द्रव्यनिका उत्पादादि स्वभावका निरूपण है ॥१॥ अग्रायणीपूर्वके छिनवै कोटि पदनिमें द्वादशांग का सारभूत सप्त तत्त्व, नव पदार्थ, षट् द्रव्य, सातसै सुनय दुनयादिकका स्वरूपका वर्णन है ॥२॥ वीर्यानुवादके सप्तलक्ष पदनिमें आत्मवीर्य, परवीर्य क्षामवीर्य, कालवीर्य भाववीर्य, तपोवीर्यादि समस्त द्रव्यगुण पर्यायनिका वीर्यका निरूपण है ॥३॥ अस्तिनास्तिप्रवाद नाम पूर्वके साठि लक्ष पदनिमें जीवादि द्रव्यनिका स्वद्रव्यादिचतुष्टयकी अपेक्षा अस्ति और पर द्रव्यादि चतुष्टयकी अपेक्षा नास्ति इत्यादिक सप्त भङ्गादिक तथा नित्य अनित्य एक अनेकादिकनिका विशेष वर्णन है ॥४॥ ज्ञानप्रवाद पूर्वके एक घाटि कोटि पदनिमें मति श्रुति अवधि मनःपर्यय केवल ये पांच ज्ञान, अर कुमति कुश्रुत विभङ्ग ये तीन अज्ञान इनका स्वरूप, संख्या, विषय, फलनिके आश्रय प्रमाणपना अप्रमाणपना वर्णन है ॥५॥ सत्यप्रवादपूर्वके छह अधिक एककोटि पदनिमें वचनगुप्ति अर वचनके संस्कार-कारण, ..., अर बहुत प्रकार असत्य, अर दश प्रकारके सत्यका वर्णन है ॥६॥ आत्मप्रवादपूर्वके छब्बीस कोटि पदनिमें आत्मा जीव है, कर्त्ता है, भोक्ता है, प्राणी है, वक्ता है, ... वेद, है, विष्णु है, स्वयंभू है, शरीरी ... ...

मानी मायी वियोगी असंवृत संवृत इत्यादि स्वरूपका वर्णन है ।७॥ कर्मप्रवादपूर्वके एककोटि अस्सी लाख पदनिमें कर्मनिका बंध उदय उदीरणा सत्त्व उत्कर्षण उपशमन संक्रमण निधत्ति निकाचितादि अवस्था ; अर ईर्यापथ तपस्या अधःकर्मादिकनिका वर्णन है ॥८॥ प्रत्याख्यानपूर्वके चौरासी लाख पदनिमें नाम स्थापना द्रव्य क्षेत्र काल भावनिकूं आश्रय करि, पुरुषनिका संहनन, अर बलादिकनिके अनुसार प्रमाणीक काल वा अप्रमाणीक काल लिये त्याग अर पापसहित वस्तुतैं निराला होना, अर उपवास की भावना, अर पंचसमिति, अर तीनगुप्तिका वर्णन है ॥९॥ विद्यानुवादके एककोटि दशलाख पदनिमें अंगुष्ठप्रसेनादिक सातसै अल्पविद्या, अर रोहिणी आदि पांचसै महाविद्यानिक स्वरूप, सामर्थ्य अर इनका साधन मंत्र तंत्र पूजाविधानका, अर सिद्ध भई तिनका, फलका अर अन्तरिक्ष भौम अङ्ग स्वर स्वप्न लक्ष व्यंजन छिन्न ये अष्टप्रकार निमित्तज्ञानका वर्णन है । ॥१०॥ कल्याणानुवादपूर्वके छव्वीसकोटि पदनिमें तीर्थंकर चक्रधर बलदेव प्रतिवासुदेवादिकनिका गर्भकल्याणादिक महाउत्सवनिका ; अर, इन पदनिका कारण षोडश भावना वा तपविशेष आचरणादिकनिका, अर चंद्रमा सूर्य ग्रह नक्षत्रनिका गमन तथा ग्रहण, शकुनादिकके फलका वर्णन है ॥११॥ प्राणप्रवाद पूर्वके तेरहकोटि पदनिमें कायाकी चिकित्साका अष्टांग

आयुर्वेद जो वैद्यविद्या ताका भूतकर्मका अर जांगलिका अर इला पिंगलादिक स्वासोच्छ्वासका अर गतिके अनुसार दशप्राणनिके उपकारक द्रव्यनिका वर्णन है ॥१२॥ क्रियाविशालके नवकोटि पदनिमें संगीतशास्त्र छंद अलंकार बहत्तरि कला अर स्त्रीके चौसठिगुण, अर शिल्पादिज्ञान, अर चौरासी गर्भाधानादि क्रिया, अर एकसौ आठ सम्यग्दर्शनादिक्रिया, अर पच्चीस देववंदनादिक नित्य नैमित्तिक क्रियाका वर्णन है ॥१३॥ त्रैलोक्यबिंदुसारपूर्व के साढा बारह कोटि पदनिमें त्रैलोक्यका स्वरूप, छत्तीस परिकर्म, आठ व्यवहार, च्यारि बीज, मोक्षका स्वरूप, मोक्षगमनका कारण क्रिया अर मोक्षसुखका वर्णन है ॥१४॥ ऐसें, पिच्याणवै कोडि पचासलाख पांच पदनिमें चौदह पूर्व वर्णन किया।

अथ दृष्टिवादांगको पांचवों भेद चूलिका पांच प्रकार है। एक चूलिका के दोय कोटि नव लख निवासी हजार दोय सौ पद हैं। तिनमें जलगताचूलिका में जलका स्तम्भन, जलमें गमन, अग्निका स्तम्भन, भक्षण, अग्निऊपरि आसन, अग्निमें प्रवेशनादिकका कारण मन्त्रतन्त्र, तपश्चरणका वर्णन है ॥१॥ अर स्थलगताचूलिका में मेरु कुलाचलादिकनिमें भूमिमें प्रवेश करनेकूं अर शीघ्रगमनके कारण मन्त्र तन्त्र तपश्चरण का वर्णन है ॥२॥ अर मायागताचूलिकामें मायारूप इंद्रजालादि विक्रिया मंत्रतंत्र तपश्चरणादि-

कका वर्णन है ॥३॥ आकाशागतचूलिकामें आकाशगमनका कारण मंत्र तन्त्र तपश्चरणादिका वर्णन है ॥४॥ रूपगता चूलिकामें सिंह हस्ती तुरङ्ग मनुष्य वृक्ष हरिण शशा बलध व्याघ्रादिकनिके रूप पलटनेके कारण मन्त्र तन्त्र तपश्चरणका वर्णन है, तथा चित्राम माटी पाषाण काष्ठादिक इनका खोदना तथा धातुवाद रसवाद खान्यवादादिककी रचनाके अर्थ हैं ॥४॥ पंचचूलिकाके दशकोटि गुणचास लाख छियालीस हजार पद हैं।

इहां ऐसा जानना समस्त द्वादशाङ्गके एक घाटि एकठी प्रमाण अक्षर हैं। १८४४६७४४०७३७०६५५१६१५ एते अपुनरुक्त अक्षर हैं। एक बार आया अक्षर दूसरा नाहीं आवै। इनमें चौसठि संयोग ताईं अक्षर हैं अ आगममें कह्या ऐसा मध्यमपदका प्रमाण सोलासै चौंतीस कोडि, तीयासी लक्ष, सात हजार, आठसौ अठासी १६३४ ८३०७८८८ अपुनरुक्त अक्षर हैं। इन अक्षरनिका प्रमाण का भाग दीए एकसौ बारा कोटि, तियासी लक्ष, अठावन हजार, पांचपद आए। तिनमें समस्त द्वादशाङ्ग हैं। और अवशेष अक्षर आठकोटि एक लक्ष आठ हजार एकसौ पचेत्तरि अङ्क रहे ८०१०८१७५। इन अक्षरनिका पूर्ण एकपद होय नाहीं, तातैं इनकूं अंगबाह्य कह्या। तिन अक्षरनिका सामायिक आदि चौदह प्रकीर्णक हैं।

सामायिक नाम प्रकीर्णकमें मिथ्यात्व कषायादिकके

क्लेशका अभावरूप नाम स्थापना द्रव्य क्षेत्र काल भावके भेदतें छह्भेद रूप सामायिकका वर्णन है ॥१॥ बहुरि चौबीस अतिशय, अष्टप्रातिहार्य, परमौदारिक दिव्य देह, समवसरण सभा, धर्मोपदेशादिक तीर्थंकरनिका महात्म्यका प्रकाशरूप स्तवन प्रकीर्णक है ॥२॥ एक तीर्थंकरके आलम्बन रूप चैत्यालय प्रतिमाका स्तवन रूप प्रकीर्णक है ॥३॥ बहुरि पूर्वकृत प्रमादजनित दोषका निराकरणके अर्थि दैवसिक, रात्रिक, पाक्षिक, चातुर्मासिक, सांवत्सरिक, ऐर्यापथिक, उत्तमार्थ ऐसे सप्त प्रकार प्रतिक्रमणका जामें वर्णन ऐसा प्रतिक्रमण नाम प्रकीर्णक है ॥४॥ बहुरि सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र तप उपचार स्वरूप पंचप्रकार विनयका वर्णनरूप विनय नाम प्रकीर्णक है ॥५॥ बहुरि नरदेवतानिकै वन्दना के अर्थि तीन प्रदक्षिणा, चतुःशिरोनति, तीन शुद्धता, द्वादश आवर्त इत्यादिक नित्य नैमित्तिकक्रियाका जामें वर्णन ऐसा कृतिकर्म प्रकीर्णक है ॥६॥ बहुरि जामें साधुका आचारके गोचर आहारकी शुद्धताका वर्णन रूप दश वैकालिक प्रकीर्णक है ॥७॥ बहुरि च्यार प्रकार उपसर्ग तथा बाईस परीषहनिके सहनेके विधान अर इनके फलका वर्णन रूप उत्तराध्ययनप्रकीर्णक है ॥८॥ बहुरि साधुकै योग्य आचरणका विधान अयोग्यसेवनका प्रायश्चित्तका वर्णन रूप कल्पव्यवहार नाम प्रकीर्णक है ॥९॥ बहुरि द्रव्य क्षेत्र काल भावके आश्रय साधुहू ये योग्य है, ये अयोग्य

हैं, ऐसा विभागका वर्णनरूप कल्पाकल्प नाम प्रकीर्णक है ॥१०॥ बहुरि उत्कृष्ट संहननादिसंयुक्त द्रव्य क्षेत्र काल भावके प्रभावतैं उत्कृष्टचर्याकरि वर्तते ऐसें जिनकल्पी साधुनिके योग्य त्रिकालयोगादि आचरणका अर स्थविरकल्पीनिका दीक्षा शिक्षा गणपोषण आत्मसंस्कार सल्लेखना अर उत्कृष्टस्थानगत उत्कृष्टआराधनाका वर्णनरूप महाकल्प नाम प्रकीर्णक है ॥ ११ ॥ जामें भवन व्यन्तर ज्योतिष्क तथा कल्पवासीनिके विमाननिमें उत्पत्तिका कारण दान पूजा तपश्चरण अकामनिर्जरा सम्यक्त्व संयमादिकका विधान तिनमें उपजनेका स्थान वैभवका वर्णनरूप पुण्डरीक नाम प्रकीर्णक है ॥१२॥ बहुरि महर्द्धिक देवनिमें इन्द्र प्रतींद्रादिकनिमें उत्पत्तिका कारण तपोविशेषादिक आचरणका कहने वाला महापुण्डरीक प्रकीर्णक है ॥१३॥ जामें प्रमादप्र उपज्या दोषनिका त्यागरूप निषिद्धका प्रकीर्णक है ॥१४॥

ऐसे द्वादशाङ्ग सूत्र का ज्ञान है। सो तप का प्रभावतै उपजै है। सो आप पढ़ै है, अन्यकी बुद्धिप्रमाण शिष्यनिकूं पढावैं है। तिन बहुश्रुतनिकी भक्ति है सो संसार परिभ्रमण का नाश करै है। बहुरि जो शास्त्रनि की भक्ति है सो हू बहुश्रुतभक्ति है। जो गुणनिमें अनुराग करना ताकूं भक्ति कहिये हैं। जो शास्त्रनि में अनुरागकरि पढ़ै तथा शास्त्र के अर्थकूं अन्यकूं कहै, जो धनकूं लगाय शास्त्रनिको लिखावै तथा अपने हस्तकरि शास्त्र लिखै तथा हीन

अधिक अक्षरकूं मात्राकूं शोधन करै तथा पढनेवालेनिकूं शास्त्र लिखायदेवै, तथा व्याख्यान करै, पढावने बचावने-वालेनिकी आजीविकाकी थिरताकरि. शास्त्रनिके ज्ञानाभ्यासका प्रवर्तन करावै, स्वाध्याय करनेके अर्थि निराकुल स्थान देवै तो ज्ञानावरण कर्मके नाश करनेवाली बहुश्रुत भक्ति है। बहुरि बहुमूल्य वस्त्रनिमें पूठा लगाय पट्टमय डोरि करि शास्त्रनिकूं बांधे जो देखने श्रवण पठन करने वालेनिका मनकूं रंजायमान करै सो समस्त बहुश्रुतभक्ति है। बहुरि सुवर्णकरि मनोहर घड़े हुये अर पंचप्रकार रत्ननिकरि जटित, सैकड़ा पुष्पनिकरि शास्त्रकी सारभूत पूजा करै सो श्रुतभक्ति संशयादिकरहित सम्यग्ज्ञान उपजाय अनुक्रमतैं केवलज्ञान उपजावै है। जो पुरुष अपने मनकूं इन्द्रियनिके विषयनितैं रोकि अर बारम्बार श्रुतदेवताका गुणस्मरण करके भली विधियं बनाया पवित्र अर्घ श्रुतदेवता का उतारै है। सो समस्त श्रुतका पारगामी होय केवलज्ञान उपजाय निर्वाणकूं प्राप्त होय है। ऐसे बहुश्रुत भक्ति नाम बारमी भावना वर्णन करी सो निरन्तर भावो ॥ १२ ॥

१३. प्रवचन भक्ति भावना

अथ प्रवचनभक्तिनाम तेरमी भावनाकूं वर्णन करै हैं। प्रवचन नाम जिनेन्द्र सर्वज्ञ वीतरागकरि प्ररूपण किय

आगमका, है। जिसमें षट्द्रव्यनिका, पंचास्तिकायका सप्ततत्वनिका, नवपदार्थनिका वर्णन है अर कर्मनिकी प्रकृतीनिका नाश करने का वर्णन है सो आगम है। जाका प्रदेश बहुत होय ताकी अस्तिकाय संज्ञा है। अर गुणपर्यायनिकू प्राप्त निरन्तर होय तातैं द्रव्य संज्ञा है। वस्तुपनाकरि निश्चय करिये तातैं पदार्थसंज्ञा है। स्वभावरूपपनातैं तत्त्व-संज्ञा है। सो इनकी विशेष कथनी आगे प्रकरण पाय कहसी। जैसे अन्धकारसंयुक्त महलमें दीपक हस्तमें लेकरि समस्त पदार्थ देखिये हैं तैसे त्रैलोक्यरूप मन्दिरमें प्रवचनरूप दीपककरि सूक्ष्म स्थूल मूर्तीक अमूर्तीक पदार्थ देखिये है। प्रवचनरूप ही नेत्रनिकरि मुनीश्वरनि चेतनादि गुणनिके धारक समस्त द्रव्यनिका अवलोकन करे। जिनेंद्रके परमागमकूं योग्यकालमें बहुत विनयतैं पढ़िये सो प्रवचन भक्ति है। कैसाक है प्रवचन—जामें षट्द्रव्य सप्ततत्त्व नव-पदार्थनिका भेद समस्तगुणपर्यायनिका वर्णन है। जामें भूतकाल अनन्त भया अर भविष्यत् अनन्त होयगा अर वर्तमान तिनका स्वरूप वर्णन है। जामें अधोलोक की सप्तपृथ्वी अर नारकीनिका वसनेका, उत्पत्ति होनेका स्थाननिकूं अर आयुकाय वेदना गत्यादिक समस्त का, अर भवनवासी देवनिका सातकरोड़ बहत्तरलाखभवन-निका, अर तिनका आयु काय विभव विक्रिया भोगादिक-निका अधोलोक में वर्णन किया है।

आमैं मध्यलोक सम्बन्धी असंख्यात द्वीप समुद्रनिका, अर तिनमें मेरु कुलाचल नदी द्रहादिकनिका, अर कर्मभूमि के विदेहादिक क्षेत्रनिका, अर भोगभूमिका, अर छिनवै अन्तर्द्वीपसम्बन्धी मनुष्यनिका, अर कर्मभूमिके भोगभूमिके मनुष्यनिका कर्तव्यका, अर आयुकाय सुख दुःखादिकनिका, अर तिर्यचनिका, व्यंतरनिके निवास विभव परिवार आयु काय सामर्थ्य विक्रिया का वर्णन है। तथा मध्यलोकमें ज्योतिष्कदेव हैं तिनके विमान विभव परिवार आयु कायादिकका, तथा सूर्य चन्द्रमा ग्रह नक्षत्रनिका, चारक्षेत्रगत संयोगादिकका वर्णन है। बहुरि उर्ध्वलोकके त्रेसठपटलनिका, स्वर्गके अहमिंद्रके पटलनिका, इन्द्रादिक देवनिका विभव परिवार आयु काय शक्ति गति सुखादिकका वर्णन है। ऐसें सर्वज्ञकरि प्रत्यक्ष देख्या त्रिलोकवर्ती समस्त द्रव्यनिके उत्पाद व्यय ध्रौव्यपनां समस्त प्रवचन में वर्णन किया है। बहुरि कर्मनिकी प्रकृतिनिका बंध होने का, उदयका, सत्वका, संक्रमणादिकनिका समस्त वर्णन आगममें है।

बहुरि संसारतैं उद्धार करने वाला रत्नत्रयका स्वरूप प्राप्त होनेका उपाय परमागम ही में है। बहुरि गृहस्थपणामें श्रावकधर्मका जघन्य मध्यम उत्कृष्ट चर्याका तथा श्रावकनिके व्रत संयमादिक व्यवहार परमार्थरूप प्रवृत्तिका वर्णन प्रवचनतैंही जानिये है। बहुरि [illegible]

महाव्रतादि अट्ठाईस मूलगुण, अर चौरासीलाख उत्तरगुण-अर स्वाध्याय, ध्यान अहार विहार सामायिकादि चारित्र चर्याका, धर्मध्यान शुक्लध्यानादिकका, सल्लेखनामरणका, समस्तचर्याका वर्णन प्रवचनमें है। बहुरि चौदह गुणस्थाननिका स्वरूप, तथा चौदह जीवसमासनिका, अर चौदह मार्गणानिका वर्णन प्रवचनतैंही जानिये है। तथा जीवनिकै एकसो साढ़ानिन्यानवै लख कुलकोड अर चौरासीलाख जातिका योनिस्थान प्रवचनहीतैं जानिये है। तथा च्यार अनुयोग, च्यार शिक्षाव्रत, तीनगुणव्रत आगमतैं ही जानिये है। तथा च्यार गतीनिका भेद, अर सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्रका स्वरूप भगवानका प्ररूप्या आगमहीतैं जानिये है। बहुरि द्वादश तप, अर द्वादश अङ्ग, अर चौदह पूर्व, चौदह प्रकीर्णकनिका स्वरूप प्रवचनहीतैं जानिये है। बहुरि उत्सर्पिणी अवसर्पिणी कालकी फिरणी, अर यामैं छह छह भेदरूप कालमैं पदार्थकी परिणतिका भेदनिका स्वरूप आगमतैं जानिये है। बहुरि कुलकर चक्रधर बलदेव वासुदेव प्रतिवासुदेव इत्यादिकनिकी उत्पत्ति, प्रवृत्ति, धर्म तीर्थका प्रवर्तन, चक्रीका साम्राज्य, वासुदेवादिकनिके विभव परिवार ऐश्वर्यादिक आगमहीतैं जानिये है। बहुरि जीवादिक द्रव्यनिका प्रभाव आगमहीतैं जानिये है। तातैं आगमकूं भक्तिपूर्वक सेवनबिना मनुष्यजन्म [redacted] पशु समान है। भगवान सर्वज्ञ वीतराग समस्त लोक अलोककूं

अनन्तानन्त भूत भविष्यत् वर्तमान कालवर्ती पर्यायनिकरि संयुक्त, एक समयमें युगपत्, क्रमरहित, हस्तकी रेखावत्, प्रत्यक्ष जान्या, देख्या, ताकरि प्ररूपण किया स्वरूपकूं सप्तऋद्धि, च्यार ज्ञानधारी गणधरदेव द्वादशांगरूप रचना प्रगट करी।

इहां ऐसा विशेष जानना:—जो देवाधिदेव परमपूज्य धर्मतीर्थके प्रवर्तन करने वाले, अनन्तज्ञान अनन्तदर्शन अनन्तवीर्य अनन्तसुखरूप अन्तरंगलक्ष्मी, अर समवसरणादि बहिरंगलक्ष्मीकरि मंडित, अर इन्द्रादिक असंख्यात देवनिके समूहकरि वंदनीक, चौंतीस अतिशय, अष्ट प्रातिहार्यादिक, अनुपम ऋद्धिकरि महित, अर क्षुधा तृषादिक अष्टादश दोषरहित, समस्त जीवनिका परमोपकारक, अर लोकअलोकके अनंतगुण पर्यायनिका क्रमरहित, युगपत् ज्ञानका धारक, अर अनंतशक्तिका धारक, संसारमें डूबते प्राणीनिकूं हस्तावलम्बन देनेवाला, समस्त जीवनिका दयालु परमात्मा परमेश्वर परंब्रह्म परमेष्ठी स्वयंभू शिव अजर अमर अर्हंतादि नामकरि विख्यात, अशरण प्राणीनिकूं परमशरण, अन्तका परमौदारिक देहमें तिष्ठता, गणधरादिक मुनीश्वरनिकरि वंदनीक हैं चरण जिनका, अर कण्ठ तालवा ओष्ठ जिह्वादिक चलनहलनरहित, इच्छाविना अनेक प्राणीनिका पुण्यके प्रभावतें उपज्या, अर आर्य अनार्य समस्त देशके प्राणीनिका ग्रहणमें आवता

समस्त पापका घातक, दिव्यध्वनिकरि भव्य जीवनिका मोह अन्धकारकूं नष्ट करता, चमरनिकरि वीज्यमान, छत्रत्रयादिक प्रातिहार्यके धारक, रत्नमयसिंहासन, अर च्यार अंगुल अंतरीक्ष विराजमान, भगवान सकलपूज्य परम भट्टारक श्रीवर्धमानदेवाधिदेव मोक्षमार्ग के प्रकाशनेके अर्थि समस्तपदार्थनिका स्वरूप सातिशय दिव्यध्वनिकरि प्रगट किया। तिस अवसरमें निकटवर्ती निर्ग्रंथ ऋषीश्वरनिकरि वंदनीक सप्तऋद्धिसमृद्ध च्यारि ज्ञानके धारक श्रीगौतम नाम गणधरदेव को कोष्ठबुद्धि आदिक ऋद्धिके प्रभावतैं भगवानभाषित अर्थकूं नहीं विस्मरण होतां, भगवानभाषित अर्थकूं धारणकरि द्वादशांगरूप रचना रची।

जब चतुर्थ कालका तीन वर्ष साढा आठ महीना बाकी रह्या तदि श्रीवर्धमानस्वामी निर्वाण भये, पाछैं गौतम स्वामी, सुधर्माचार्य, जम्बूस्वामी ए तीन केवली बासठ वर्ष पर्यंत केवलज्ञानकरि समस्त प्ररूपणा करी। पाछैं केवलज्ञानका अभाव भया। ता पाछैं अनुक्रमकरि विष्णु, नंदिमित्र, अपराजित, गोवर्धन, भद्रबाहु ये पांच मुनि द्वादशांगके धारक श्रुतकेवली भए। तिनका एकसौ वर्ष का अवसर क्रमतैं भया। तिनके अवसरमें भगवान केवलीतुल्य पदार्थनिका ज्ञान अर प्ररूपणा रही। बहुरि विशाखाचार्य, प्रोष्ठिलाचार्य, क्षत्रिय, जयसेन, नागसेन, सिद्धार्थ, धृतषेण, विजय, बुद्धिमान, गंगदेव, धर्मसेन ये दश पूर्वके

धारक एकादश परम निर्ग्रन्थ [illegible]
तीयासी वर्षमें भये । ते हू [illegible]
नक्षत्र, जयपाल, पांडुनाम, [illegible]
महामुनि एकादशांग विद्याके [illegible]
बीस वर्षमें भये । तेहू पयादस [illegible]
यशोभद्र, भद्रबाहु, महायश, [illegible]
एक प्रथमअङ्गका पारगामी [illegible]
भये । ऐसैं भगवान वीरजिनेन्द्र [illegible]
तिरासी वर्ष पर्यंत मनुष्य [illegible]
निमित्तैं बुद्धिवीर्यादिककी [illegible]
अनेक मुनि निर्ग्रन्थ वीतराग [illegible]
गए । तथा उमास्वामी भये । [illegible]
विज्ञानसम्पन्न परममंगमगुरु [illegible]
श्रुतका अव्युच्छिन्न अर्थके [illegible]
चली आई । तिनमें श्री [illegible]
प्रवचनसार, पंचास्तिकाय, [illegible]
लेय अनेक ग्रन्थ रचे ते [illegible]
हैं । इन ग्रन्थनिका जो [illegible]
भक्ति है ।

बहुरि दश अध्यायका [illegible]
रच्या । तिस तत्त्वार्थपर [illegible]
पूज्यपाद स्वामी रची है । [illegible]

वार्तिक सोलह हजार श्लोकनिमें थी अकलङ्कदेव रच्या। अर श्लोकवार्तिक बीस हजार श्लोकनिमें विद्यानन्दिस्वामी रच्या। अर गन्धहस्ती नाम महाभाष्य चौरासी हजार श्लोकनिमें समन्तभद्रस्वामी बड़ी टीका रची सो अबार इस अवसरमें मिले हैं नाहीं। अर गन्धहस्तिमहाभाष्य को आदि मंगलाचरण एकसौ पन्द्रह श्लोकनिमें देवागमस्तोत्र किया। ताकी आठसौ श्लोकनिमें टीका अष्टशती तो अकलङ्कदेव रची अर देवागम अष्टशती ऊपरि आप्तमीमांसा नामा जाकूं अष्टसहस्री कहिए सो आठ हजार श्लोकनि में विद्यानंदिजी रची। तिस अष्टसहस्री ऊपरि सोलहहजार टिप्पणी है। अर विद्यानन्दि स्वामी कृत आप्तकी परीक्षारूप तीनहजार श्लोकनिमें आप्तपरीक्षा नाम ग्रन्थ है। तथा परीक्षामुख माणिक्यनन्दि रच्या। अर याकी बड़ी टीका प्रभाचन्द्र आचार्य प्रमेयकमलमार्तण्ड बाराहजार श्लोकनिमें रची। अर छोटी टीका प्रमेयचन्द्रिका अनन्तवीर्यनाम आचार्य रची। अर अकलंकदेव कृत लघुत्रयी ऊपरि न्यायकुमुद चन्द्रोदय सोलहहजार श्लोकनि में प्रभाचन्द्रनाम आचार्य रच्या। तथा और हू न्यायके केई ग्रन्थ प्रमाणपरीक्षा, प्रमाणनिर्णय, प्रमाणमीमांसा तथा बालावबोधन्यायदीपका इत्यादिक जिनधर्मके स्तंभ, द्रव्यनिका: प्रमाणकरि निर्णय करते, अनेकान्तका शरणा हुवा द्रव्यानुयोगग्रन्थ जयवन्ते प्रवर्ते हैं।

ोग्य होय ताकूं आवश्यक कहिये
न नाहीं करनेका चिंतवन सो
ावना है। अथवा इंद्रियनिके
ोये। अवश्य जे मुनि तिनकी जो
आवश्यककी हानि नाहीं करना
कहिये। ते आवश्यक छह प्रकार
वन्दना, प्रतिक्रमण, स्वाध्याय
ाक हैं सो कहिये हैं। जो देहतैं
ऐसा परमात्मस्वरूप, कर्मरहित
कायाकार ध्यावता मुनि है सो
ाय है। अर जो विकल्परहित
का मन नाहीं तिष्ठै तो तपस्वी
तिनको पुष्ट करो, अङ्गीकार
आस्रवकूं निराकरण करो,
न्दर वस्तुमें तथा शुभ अशुभ
करो, तथा आहार वस्तिका-
में ममभाव करो। स्तुतिमें–

परदेशमें, सुख अवस्था में, दुःखमें आपदामें, सम्पदामें, परमशरणभूत सम्यग्ज्ञान ही है। स्वाधीन अविनाशी धन ज्ञान ही है। यातैं शास्त्रनिके अर्थ ही का सेवन करना। अपनी आत्माकूं नित्य ज्ञानदान करो। अपनी सन्तानकूं तथा शिष्यनिकूं ज्ञानदान ही करो। ज्ञानदान देने समान कोटिधनका दान नहीं है। धन तो मद उपजावै है, विषयनिमें उरझावै, दुर्ध्यान करै, संसाररूप अन्धकूपमें डुबोवे, तातैं ज्ञानदान समान दान नाहीं। एक श्लोक, अर्धश्लोक, एक पद मात्रहूका जो नित्य अभ्यास करै तो शास्त्रार्थका पारगामी हो जाय। विद्या है सो परमदेवता है। जो माता पिता ज्ञानाभ्यास करावै हैं वे कोटयां धन दिया। जे सम्यग्ज्ञानके दाता गुरु हैं तिनका उपकार समान त्रैलोक्यमें कोऊ उपकार नाहीं। अर जो ज्ञानके देनेवाला गुरुका उपकारकूं लोपै है तिस समान कृतघ्नी नाहीं, पापी नाहीं। ज्ञानका अभ्यास विना व्यवहार परमार्थ दोउनिमें मूढ है। यातैं प्रवचनभक्ति ही परमकल्याण है। प्रवचनका सेवनविना मनुष्य पशुसमान है। या प्रवचनभक्ति हजारां दोषनिका नाश करनेवाली है। याका भक्तिपूर्वक अर्घ उतारण करो। याहीतैं सम्यग्दर्शनकी उज्ज्वलता होय है। ऐसे प्रवचनभक्ति नामा तेरमी भावना वर्णन करी ॥ १३ ॥

१४. आवश्यकापरिहाणिभावना

अब आवश्यकापरिहाणि नाम चौदमी भावना वर्णन

यक है ॥ २ ॥

ट्टरि चतुर्विंशति-तीर्थंकरनिमैं एक तीर्थंकरकी वा
सिद्ध आचार्य उपाध्याय सर्वसाधुनिमैं एकहू
ार स्तुति करना सो वन्दना आवश्यक है ॥ ३ ॥
जो समस्त दिनमें प्रमादके वश होय तथा कषायनिके
ाय, वा विषयनिमें रागद्वेषी होय कोऊ एकेन्द्रियादिक
का घात किया, तथा अनर्थक प्रवर्तन किया, वा
ोजन किया, वा किसी जीवका प्राण पीडित किया,
कठोर मिथ्या वचन कहा, वा किसीकी निन्दा
द किया, वा अपनी प्रशंसा करी वा स्त्रीकथा,
कथा, देशकथा, राज्यकथा करी, तथा अदत्तधन ग्रहण
, वा परका धन में लालसा करी, तथा परकी स्त्रीमें
किया, तथा धनपरिग्रहादिकमें लालसा करी,
मस्त पाप छोटे किये बंधके कारण किये।
ऐसा पापरूप परिणामनिकूं भगवान पंच परमगुरु
रक्षा करहु। अब ए परिणाम मिथ्या होहु। पंच
ीके प्रसादतैं हमारे पापरूप परिणाम मति होहु।

दृष्टारूप अनुभव करता रागद्वेषादिविकार रहित तिष्ठै है, ताके साम्यभाव होय है सोही सामायिक है।

बहुरि भगवान जिनेन्द्रके अनेक नामनिकरि स्तवन करना, सो स्तवन नाम आवश्यक है। जो कर्मरूपमें वैरीकूं आप जीते तातैं 'जिन' हो। अर अपने स्वरूपमें आपकरि आप तिष्ठो हो तातैं स्वयंभू हो। अर केवलज्ञानरूप नेत्रकरि त्रिकालवर्ती पदार्थनिकूं जानो हो तातैं त्रिलोचन हो। अर आप मोहरूप अन्धासुरकू मारया तातैं अन्धकांतक हो। आप घातियाकर्म रूप अर्धवैरीनिका नाश करके ही अद्वितीय ईश्वरपना पाया तातैं अर्धनारीश्वर हो। आप शिवपद जो निर्वाणपद, तामें बसे तातैं आप शिव हो। पापरूप वैरीका संहार करो हो तातैं आप हर हो। लोकमें सुखका कर्त्ता तातैं आप शंकर हो। शं जो परम आनन्दरूप सुख तामें उपजे तातैं शंभू हो। वृष जो धर्म ताकरि दिपो हो तातैं आप वृषभ हो। अर जगतके सकल प्राणीनिमें गुण-निकरि बड़े तातैं जगज्ज्येष्ठ हो। क जो सुख ताकरि समस्त जीवनिकी पालना करो तातैं आप कपाली हो। केवलज्ञानकरि समस्त लोक अलोक में व्याप्त हो रहे तातैं आप विष्णु हो। अर जन्मजरामरणरूप त्रिपुरकूं मारया तातैं आप त्रिपुरांतक हो। ऐसैं एकहजार आठ नामकरि आपका स्तवन इंद्र किया है। अर गुणनिकी अपेक्षा आपका अनन्त नाम हैं। ऐसैं भावनि में गुणचिंतवनकरि जो चौबीस तीर्थकरनिका स्तवन करै है सो स्तवन नाम

आवश्यक है ॥ २ ॥

बहुरि चतुर्विंशति तीर्थंकरनिमैं एक तीर्थंकरकी वा अर्हंत सिद्ध आचार्य उपाध्याय सर्वसाधुनिमैं एककू मुख्यकरि स्तुति करना सो वन्दना आवश्यक है ॥ ३ ॥ बहुरि जो समस्त दिनमें प्रमादके वश होय तथा कपायनिके वश होय, वा विषयनिमें रागद्वेषी होय कोऊ एकेन्द्रियादिक जीवनिका घात किया, तथा अनर्थक प्रवर्तन किया, वा सदोष भोजन किया, वा किसी जीवका प्राण पीडित किया, कर्कश कठोर मिथ्या वचन कहा, वा किसीकी निन्दा अपवाद किया, वा अपनी प्रशंसा करी वा स्त्रीकथा, भोजनकथा, देशकथा, राज्यकथा करी, तथा अदत्तधन ग्रहण किया, वा परका धन में लालसा करी, तथा परकी स्त्रीमें राग किया, तथा धनपरिग्रहादिकमें लालसा करी, ते समस्त पाप छोटे किये बंधके कारण किये। अब ऐसा पापरूप परिणामनितैं भगवान पंच परमगुरु हमारी रक्षा करहु। अब ए परिणाम मिथ्या होहु। पंच परमेष्ठीके प्रसादतैं हमारे पापरूप परिणाम मति होहु। ऐसे भावनिकी शुद्धतावास्ते कायोत्सर्गकरि पंच नमस्कारके नव जाप्य करै। ऐसे समस्त दिनकी प्रवृत्तिकू संध्याकालका चिंतवनकरि पापपरिणामनिकू निंदना सो दैवसिक प्रतिक्रमण है। अर रात्रि सम्बन्धी पापका दूरिकरने के अर्थि प्रभात प्रतिक्रमण करना सो रात्रिक प्रतिक्रमण है। बहुरि मार्गमें चालनेमें दोष लग्या ताकी शुद्धिका जो

प्रतिक्रमण सो ऐर्यापथिक प्रतिक्रमण है। एक पत्त के दोष निराकरणके अर्थ पाक्षिक प्रतिक्रमण है, च्यार महीने के दोष निराकरणके अर्थ प्रतिक्रमण करना चातुर्मासिक प्रतिक्रमण है। एक वर्षके दोष निराकरण के अर्थ सांवत्सरिक प्रतिक्रमण। समस्त पर्यायके कालका दोष निराकरणके अर्थ अंत्यसंन्यासमरणकी आदिमें प्रतिक्रमण है, सो उत्तमार्थ प्रतिक्रमण है। ऐसे सप्त प्रकार प्रतिक्रमण हैं। तिनमें गृहस्थकूं संध्या अर प्रभात तो अपना नफा टोटा अवश्य देखना योग्य है। इहाँ जो सो पचास रुपयाका व्यवहार करनेवालाहू आथणनै ठिगाई जिताई देखै है, तो इस मनुष्य जन्मकी एक एक घड़ी कोटिधनमें दुर्लभ, गयां पाछैं नाहीं मिलै है, याका विचार हू अवश्य करना—जो आज मेरे परमेष्ठीका पूजनमें स्तवनमें केता काल गया अर स्वाध्यायमें पंचपरमगुरुके शास्त्रश्रवण में तत्त्वार्थके चर्चामें, धर्मात्माकी वैयावृत्तिमें केता काल गया। अर घरके आरम्भमें कषायमें तथा विकथा करनेमें, विसंवादमें, भोजनादिकमें, वा अन्य इन्द्रियनिके विषयनिमें, प्रमादमें, निद्रामें, शरीरके संस्कारमें, हिंसादिक पंच पापनिमें केता काल गया है। ऐसा चिंतवनकरि पापमें बहुत प्रवृत्ति भई होय तो आपकूं धिक्कार देय, पापबंधके कारणनिकूं घटाय, धर्म कार्यमें आत्माकूं युक्त करना योग्य है। पंचमकालमें प्रतिक्रमण ही परमागममें धर्म कह्या है। आत्मा-

का हित अहितका विचारमें निरन्तर उद्यमी रहना योग्य है। यो प्रतिक्रमण आत्माकी बड़ी सावधानी करने वाला है अर पूर्वले किये पापकी निर्जरा करै है ॥ ४ ॥

बहुरि आगामी कालमें आपके आस्रवके रोकने के अर्थ पापनिका त्याग करना—जो आगे मैं ऐसा पाप कबहूँ मन वचन कायसों नांहीं करूंगा सो प्रत्याख्यान नाम आवश्यक है, सुगतिका कारण है ॥ ५ ॥ बहुरि च्यार अंगुलके अन्तरालें दोऊ पग बरोबर करि खड़ा रहै, दोऊ हस्तनिकूं लम्बायमानकरि देहसें ममता छांड़ि, नासिकाका अग्रमें दृष्टि धारि, देहतें भिन्न शुद्ध आत्माकी भावना करना कायोत्सर्ग है। निश्चल पद्मासनतें हू होय, अर खड़ा देहकरि [redacted] होय, दोऊनिमें शुद्ध ध्यानका अवलम्बनतें सफल है ॥ ६ ॥

ए छह आवश्यक परमधर्मरूप हैं। इनकूं पूजि पुष्पांजलि क्षेपि अर्घ उतारण करना योग्य है। बहुरि ए छह आवश्यक परमागममें छह छह प्रकार कह्या है। नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव करि षट् प्रकार जानना। शुभ अशुभ नामकूं श्रवणकरि राग-द्वेष नाहीं करना सो नाम सामायिक है। कोऊ स्थापना प्रमाणादिक करि सुन्दर है, कोऊ प्रमाणादिककरि हीनाधिककरि असुन्दर है। तिनके विषै राग[redacted]षका अभाव सो स्थापना सामायिक है। सुवर्ण, रूपा, रत्न, मोती इत्यादिक अर मृत्तिका

काष्ठ पाषाण कंटक छार भस्म धूल इत्यादिकनिमें राग द्वेष रहित सम देखना सो द्रव्य सामयिक है। महल उपवनादि रमणीक, स्मसानादिक अरमणीक क्षेत्रमें राग-द्वेष छांडना सो क्षेत्र सामायिक है। हिम, शिशिर, वसंत, ग्रीष्म वर्षा शरत ये ऋतु अर रात्रि दिवस, अर शुक्लपक्ष कृष्णपक्ष इत्यादिक काल विषै रागद्वेषको वर्जन सो काल सामयिक है। अर समस्त जीवनिके दुःख मति होहू ऐसा मैत्री भावकरि अशुभ परिणामनिका अभाव करना सो भाव सामायिक है। ऐसे छह प्रकार सामायिक कह्या।

अब छह प्रकार स्तवन कहे हैं। चतुर्विंशति तीर्थंकरनिका अर्थ सहित एक हजार आठ नामकरि स्तवन करना सो नामस्तवन है। अर कृत्रिम अकृत्रिम अपरिमाण तीर्थंकर अरहंतनिके प्रतिबिंबनिका स्तवन सो स्थापना स्तवन है। अर समवसरणस्थित काल देह-प्रभा, प्रातिहार्यादिकनिकरि स्तवन सो द्रव्यस्तवन है। अर कैलाश संमेदाचल ऊर्जयंत (गिरनार) पावापुर चंपापुरादि निर्वाण क्षेत्रनिका तथा समवसरणमें धर्मोपदेशक क्षेत्र का स्तवन सो क्षेत्र का स्तवन है। अर स्वर्गावतरण जन्म, तप, ज्ञान, निर्वाणकल्याणके कालका स्तवन सो काल स्तवन है। अर केवलज्ञानादि अनंतचतुष्टयभावका स्तवन सो भावस्तवन है। ऐसे छह प्रकार स्तवन कह्या। यह तीर्थंकर या सिद्ध तथा आचार्य उपाध्याय साधु इनमें एक-एकका नाम

का उच्चारण करना सो नाम वंदना है। अर अरहंत सिद्ध-आचार्यादिकनिमें एकका प्रतिबिंबादिककी वंदना सो स्थापना वंदना है। तिनके शरीरकी वंदना सो द्रव्यवंदना है। अरहंत सिद्ध आचार्यादिकनिकरि व्याप्त जो क्षेत्र ताकी वंदना सो क्षेत्र वंदना है। तिनही पंचपरमगुरुनिमें कोऊ एक करि व्याप्त जो काल ताकी वंदना सो कालवंदना है। ये तीर्थङ्करका वा सिद्धका वा आचार्यका वा उपाध्यायका वा साधुके आत्मगुणनिकूं वंदना करना सो भाववंदना है। ऐसें छह प्रकार वंदना कही।

अब छह प्रकार प्रतिक्रमण कहे हैं। अयोग्य नामके उच्चारणमें कृतकारितअनुमोदनरूप मन वचन कायतें उपज्या दोषका निराकरणके अर्थि प्रतिक्रमण करना सो नाम-प्रतिक्रमण है। कोऊ शुभ अशुभ स्थापनाका निमित्तें मन वचनकायतें उपज्या दोषतें आत्माकूं निवृत्त करना सो स्थापनाप्रतिक्रमण है। अर द्रव्य जो आहार पुस्तक औषधादिकके निमित्तें मनवचनकायतें उपज्या दोषका निराकरणके अर्थ द्रव्यप्रतिक्रमण है। क्षेत्रमें गमनस्थानादिकके निमित्तें उपज्या अशुभपरिणामजनित दोषनिका निराकरणके अर्थ क्षेत्रप्रतिक्रमण है। अर दिवस पक्ष ऋतु शीत उष्ण वर्षाकाल इनके निमित्तें उपज्या अतीचारका दूर करने कूं प्रतिक्रमण करना सो काल प्रतिक्रमण है। अर रागद्वेषादिभावनितें उपज्या दोषकें दूर करनेकूं भावप्रति-

क्रमण, कहै हैं।

बहुरि अयोग्य पापके कारण के नामउचारण करने का त्याग सो नाम प्रत्याख्यान है। अर अयोग्य मिथ्यात्वादिकके प्रवर्त्तावनेवाली स्थापना करने का त्याग सो स्थापना प्रत्याख्यान है। पापबंधका कारण सदोष द्रव्य वा तपके निमित्त निर्दोष द्रव्यकाहू मनवचनकाय करि त्याग सो द्रव्यप्रत्याख्यान है। बहुरि असंजमका कारण क्षेत्र का त्याग सो क्षेत्र प्रत्याख्यान है। असंजमका कारण काल का त्याग सो काल प्रत्याख्यान है। मिथ्यात्व असंजम कषायादिकनिका त्याग सो भावप्रत्याख्यान है। ऐसे छह प्रकार प्रत्याख्यान वर्णन किया।

अब छह प्रकार कायोत्सर्गकूं कहै हैं। पापके कारण कठोर कटुक नामादिकतैं उपज्या दोषको दूर करनेके अर्थ कायोत्सर्ग करना सो नाम कायोत्सर्ग है। पापरूप स्थापना का द्वारकरि आया अतीचार दूर करनेकूं कायोत्सर्ग करना सो स्थापनाकायोत्सर्ग है। सदोषद्रव्यके सेवनतैं तथा सदोष क्षेत्रकालके सेवनतैं संयोगतैं उपज्या दोष दूर करनेकूं कायोत्सर्ग करना सो द्रव्यक्षेत्रकालकायोत्सर्ग है। मिथ्यात्व असंयमादिक भावनिकरि कीया दोष दूर करने कूं कायोत्सर्ग करना सो भाव-कायोत्सर्ग है। ऐसे छह प्रकार छह आवश्यक वर्णन किये। अब गृहस्थके और हू छह प्रकारके आवश्यक हैं:-भगवान जिनेन्द्रका नित्यपूजन करना, निग्र

गुरुनिका सेवन, स्तवन, चिंतवन नित्य करना अर जिनेंद्र के प्ररूपे आगमका नित्य स्वाध्याय करना, इन्द्रियनिकूं विषयनितैं रोकना, छहकाय जीवनकी दया पालना सो संयम है। शक्तिप्रमाण नित्य तप करना, शक्तिप्रमाण नित्य दान देना, ये षट्प्रकारह आवश्यक गृहस्थकूं नित्य नियमतैं अंगीकार करना योग्य है। ऐसे समस्त पापका नाश करने वाली, भावनिकूं उज्वल करनेवाली आवश्यकनिकी हानिका अभावरूप चौदहमी भावना वर्णन करी ॥१४॥

१५. सन्मार्ग भावना

अब सन्मार्ग प्रभावना नाम पंद्रमी भावना वर्णन करै हैं। इहां सन्मार्ग जो मोक्षका सत्यार्थमार्ग ताकी प्रभावना प्रगट करना सो मार्गप्रभावना है। सो सन्मार्ग रत्नत्रय है, रत्नत्रय आत्माका स्वभाव है, ताकूं मिथ्यात्व, राग, द्वेष, काम, क्रोध, मान, माया, लोभ ये अनादितैं मलीन विपरीत करि राख्या है। अब परमागमका शरण पाय मोकूं मिथ्यात्वादिक दोषनिकूं दूरिकर रत्नत्रयस्वभावकूं उज्वल करना। यो मनुष्यजन्म, अर इन्द्रियपूर्णता, अर ज्ञानशक्ति, अर परमागमका शरण, अर साधर्मीनिका समागम, अर रोगादिकरि रहितपना, अर अति क्लेशरहित जीविका इत्यादिक, पुण्यरूप सामग्री पायकरके जो आत्मा कूं मिथ्यात्वकषायविषयादिकतैं नाहीं छुडाया तो अनन्तानन्त दुःखनिका भर्या संसारसमुद्रतै मेरा निकसना अनन्त

कालहू में नाहीं होयगा। जो सामग्री अबार मिली है सो अनन्तकालमेंहू अति दुर्लभ है। अर अन्तरङ्ग बहिरङ्ग सकलसामग्री पाय करके हू जो आत्माका प्रभाव नाहीं प्रकट करूंगा तो अचानक काल आय समस्त संयोग नष्ट कर देगा। तातैं अब रागद्वेष मोह दूर करि जैसें मेरा शुद्ध वीतरागरूप अनुभवगोचर होय तैसें ध्यान स्वाध्यायमें तत्पर होना।

बहुरि बाह्यप्रवृत्ति भी उज्ज्वलकरि अन्तर्गत धर्मका प्रभाव प्रगटकरि मार्गप्रभावना करना, जाकूं देखि अनेक जीवनिके हृदयमें धर्मकी महिमा प्रवेश करि जाय। जिनेंद्र का उत्सव ऐसा करना जाकूं देखि हजारां लोकनिका भाव जिनेन्द्रके जन्मकल्याणसमय जैसें इन्द्रादिक देव अभिषेक करि अपना जन्म सफल किया, तैसें जयजयकार शब्दकरि हजारां स्तवनका उच्चारणकरि, लोक आपकूं कृतार्थ मान तन मन प्रफुल्लित हो जाय, तैसें अभिषेककरि प्रभावना करना, तथा जिनेन्द्रकी बड़ी भक्ति, अर बड़ी विनय, अर निश्चल ध्यानकरि ऐसे पूजन करो जाकूं करते देखते अर शुद्धभक्तिके पाठ पढ़ते, तथा श्रवण करते, हर्षके अंकूरे प्रगट होंय, आनन्द हृदयमें नाहीं समावता बाह्य उछलने लग जाय। जिनकूं देखि अन्यलोगनिका हू ऐसा परिणाम हो जायः—अहो जैनीनिकी भक्ति आश्चर्यरूप है, जामें ये निर्दोष उत्तम उज्ज्वल प्रमाणीक सामग्री, अर ये उज्ज्वल सुवर्णके

रूपाके तथा कांसा पीतलमय मनोहर पूजनके पात्र, अर पै मक्तिके रसकरि भरे अर्थसहित कर्णनिकूं अमृतरूप सींचते शुद्ध अक्षरनिका उच्चारण, अर एकाग्ररूप विनय सहित शब्दनिके अनुकूल उज्जल द्रव्यका चढावना, अर पै परमशांतमुद्रारूप वीतरागके प्रतिबिंब प्रातिहार्यनिकरि भूषितका पूजना, स्नपन करना, नमस्कार करना, धन्य पुरुषनिकरि होय है। धन्य इनका मनवचनकाय, अर धन्य इनका धन, जो निर्वाछक होय ऐसे सन्मार्गमें लगावे हैं। ऐसा प्रभाव व्याप्त हो जाय। अर देखनेतें, अर श्रवण करनेमें निकट-भव्यनि के आनन्दके अश्रुपात झरने लगि जांय।

भक्ति ही संसारसमुद्रमें डूबतेनिकूं हस्तावलम्बन देनेवाला है। हमारे भव भवमें जिनेंद्रकी भक्ति ही शरण होहू। ऐसा जिनेंद्रका नित्य पूजन करना, तथा अष्टाह्निका पर्व में, तथा षोडशकारण दशलक्षण, रत्नत्रयपर्वमें समस्त पापके आरम्भ छांडि जिन पूजन करना, आनन्द सहित नृत्य करना, कर्णनिकूं प्रिय ऐसे वादित्र बजावना तथा स्वर ताल, मूर्छनादिसहित जिनेन्द्रके गुण गावनेतें समस्त मन्मार्ग प्रभावना है। सो जिनके हृदय में सत्यार्थ धर्म बसे हैं तिनके प्रभावना होय है। बहुरि जिनेन्द्रके प्ररूपे च्यारि अनुयोगनिके सिद्धान्तनिका ऐसा व्याख्यान करना जाकूं श्रवण करनेतें एकान्तका हठ नष्ट होय, अनेकान्त हृदयमें रुचि जाय, पापनितें कांपने लगि जाय, व्यसन छूटि जाय, -

धर्म में प्रवर्तन होजाय, अभक्ष्यभक्षणका त्याग होजाय ऐसा व्याख्यान करना जाके श्रवण करनेतैं हजारां मनुष्यनि के कुदेव कुगुरु कुधर्मके आराधनका त्याग होयके अर वीतराग देव, दयारूप धर्म, आरम्भ-परिग्रहरहित गुरुनिके आराधनमें दृढ श्रद्धान होजाय। तथा ऐसा व्याख्यान करना जो श्रवणकरि बहुत मनुष्य रात्रिभोजन, अयोग्य भोजन, अन्यायका विषय, परधनमें राग छांडि, व्रतनिमें शीलमें संयमभाव में सन्तोषभावमें लीन होय जाय। तथा ऐसा उपदेश करना जाकरि देहादिक पर द्रव्यनितैं भिन्न अपने आत्माका अनुभव होना, पर्यायमें आपा छूटना, जीव अजीवादिक द्रव्यनिका प्रमाणनयनिक्षेपनिकरि निर्णय होय, संशयरहित द्रव्यगुणपर्यायनिका सत्यार्थ स्वरूप प्रगट हो जाना, मिथ्या अन्धकार दूर होना। ऐसा आगमका व्याख्यानतैं सन्मार्ग की प्रभावना होय।

बहुरि घोर तपश्चरण करना जो कायरनिकरि नाहीं धारण किया जाय, ऐसैं तपकरि प्रभावना होय है। क्योंकि विषयानुराग छांडि निर्वाछक होनेकरि आत्माका प्रभाव सो प्रकट होय है, अर धर्मका मार्ग भी तपहीतैं दिपै है। यो तप ही दुर्गतिका मार्गका नष्ट करनेवाला है। तप बिना कामादिक विषय ज्ञानकूं चारित्रकूं नष्ट करि दे हैं। तपके प्रभावतैं कामका क्षय होय रसनांइद्रियकी चपलता नष्ट होय, लालसाका अभाव होय है। यातैं रत्नत्रयकी प्रभावना

तपद्रीतैं दृढ़ होय है। बहुरि जिनेन्द्रका प्रतिबिंबकी प्रतिष्ठा करना, जिनेन्द्रका मन्दिर करावना यातैं सन्मार्गकी प्रभावना है। जातैं प्रतिष्ठा करावनेकरि जहां तांई जिनबिंब रहैगा तहां तांई दर्शन, स्तवन, पूजनादिकरि अनेक भव्य पुण्य उपार्जन करेंगे। अर जिनमन्दिर करावेंगे तिन गृहस्थनिका ही धन पावना सफल होयगा। पूजन, रात्रिजागरण, शास्त्रनिका व्याख्यान, श्रवन-पठन, जिनेन्द्रका स्तवन, सामायिक प्रतिक्रमण, अनशनादिक तप, नृत्य गान भजन उत्सव जिनमन्दिर होय तदि ही होय। जिनमन्दिर बिना धर्मका समस्त समागम होय ही नाहीं, यातैं बहुत कहा लिखिये। अपना परका परम उपकारका मूल प्रतिष्ठा करना अर मन्दिर करवाना है।

उत्कृष्टधर्मका मार्ग तो समस्त परिग्रह छांडि वीतरागता अंगीकार करना है। परन्तु ताके प्रत्याख्यान वा अप्रत्याख्यान नाम कषायका उपशम भया नाहीं, तातैं गृहसम्पदा छांडी जाय नाहीं, अर धनसम्पदा बहुत होय तो प्रथम तो जिनका आप अन्यायसूं धन लिया होय ताके निकट जाय क्षमा ग्रहण कराय उनका धन लोटा देना। बहुरि धन बहुत होय तदि नवीन धन उपार्जनका त्याग करना। बहुरि वीतरागके घातनेवाले इन्द्रियनिके विषयनिकी लालसा छांडि करि संवररूप होना। फिर जो धन है तामेंसूं अपने मित्र हित पत्नी ग्रहण भया इत्यादिकनितैं

निर्धन रोगी दुःखित होय तिनको वा अनाथ विधवा होय तिनको यथायोग्य देय संतोषित करना। बहुरि अपने आश्रित सेवकादिक वा समीप बसनेवाले तिनको यथायोग्य सन्तोषित करकैं बहुरि पुत्रको स्त्रीको विभागादिक निरालो करि पीछैं जो द्रव्य होय ताकूं जिनबिंबके करवानेमें, या जिनबिंबकी प्रतिष्ठा करावने में, तथा जिनेंद्रके धर्मका आधार सिद्धान्तनिके लिखावनेमें, कृपणता छांडि उदार मनतें परके उपकार करने की बुद्धितैं धन लगावै है। तिस समान कोऊ प्रभावना नाहीं है। अर जे मंदिरप्रतिष्ठा तो करावैगा अर अनीतिकरि परधन राखि मेलैगा, अन्यायका धनकूं ग्रहण करेगा, तो ताकी समस्त प्रभावना नष्ट हो जायगी।

तथा प्रतिष्ठा करावनेवाला मंदिर करावनेवाला खोटा वनिज व्यवहार करै तथा हिंसादिक महापापनिमें, निंद्य अयोग्य वचननि में, तथा तीव्रलोभ में प्रवर्तें, कुशील में प्रवर्तें तथा अतिकृपणताकरि परिणाममें संक्लेशरूप हुआ धनकूं खरच करै तो समस्त प्रभावना नष्ट हो जाय। यातैं प्रतिष्ठाका करानेवाला, मंदिर करावनेवालाकी बाह्य प्रवृत्ति भी शुद्ध होय है ताकी प्रभावना होय है। तथा शिखर कलश घंटा चढ़ावने करि क्षुद्रघंटिका बांधनेकरि प्रभावना करै। तथा मंदिरनिमें चंदोवा, घन्टा सिंहासनादि -उत्तम उपकरण चढ़ावनेकरि, अर स्वाध्यायमें प्रवृत्ति इत्यादिकरि

प्रभावना दुःखका नाश करनेवाली होय है। प्रभावना शुद्ध आचरण करि होय है। यातैं जिनवचनका श्रद्धानी होय सो धर्मकी प्रभावना ही करै। जैनीनिका गाढ़ा प्रेम देखि अन्यके हृदयमें हू बड़ी महिमा दीखै। जैनीनिका धर्म जो प्राण जातैं हू अभक्ष्यभक्षण नाहीं करै हैं, तीव्ररोग वेदना आवतैंहू रात्रिमें औषधि जलादिकका पान नाहीं करै है, धन अभिमानादिक नष्ट होतैं हू असत्य वचनादि नाहीं बोलैं हैं, महाआपदा आवतैं हू परधनमें चित्त नाहीं चलावैं हैं, अपना प्राण जातैं हू अन्य जीवका घात नहीं करै हैं, तथा शीलका दृढता परिग्रहपरिमाणता परमसंतोष धारण करनेतैं आत्मप्रभावना होय। अर मार्गकी प्रभावना हू होय। तातैं समस्त धन जाते हू, अर प्राण जातै हू अपने निमित्ततैं धर्मकी निन्दा हास्य कदाचित् नाहीं करावैं ताके सन्मार्ग प्रभावना अंग होय है। इस प्रभावनाकी महिमा कोटि जिह्वानितैं वर्णन करनेको कोऊ समर्थ नाहीं है। यातैं भी भव्यजन हो! त्रिलोकमें पूज्य जो प्रभावनाअङ्ग ताकूं दृढ़ धारण करि याहीकूं भक्ति करि, पूजो। याका महाअर्घ उतारण करो। जो प्रभावनाकूं दृढ धारण करै है सो इन्द्रादिक देवनिकरि पूज्य तीर्थंकर होय है। ऐसैं सन्मार्गप्रभावनानामा पंद्रमी भावना वर्णन करी ॥१५॥

१६. प्रवचनवात्सल्य भावना

अब प्रवचनवत्सलत्व नाम सोलमी भावना वर्णन करैं

हैं। प्रवचन जो देव गुरु धर्म, इनमें जो वात्सल्य कहिये प्रीतिभाव, सो प्रवचनवत्संलत्व नाम कहिये है। जे चारित्र गुणयुक्त हैं, शीलके धारक हैं, परम साम्यभावकरि सहित, बाईसपरीषहनिके सहनेवाले, देहमें निर्ममत्व, समस्त विषय वांछारहित, आत्महितमें उद्यमी, परके उपकार करनेमें सावधान ऐसे साधुजननिके गुणनिमें प्रीतिरूपपरिणाम सो वात्सल्य है। तथा व्रतनिके धारक, अर पापतैं भयभीत, न्यायमार्गी, धर्ममें अनुरागके धारक, मंदकषायी, संतोषी ऐसे श्रावक तथा श्राविका, तिनके गुणनिमें, तिनकी संगतिमें अनुराग धारण करना सो वात्सल्य है। तथा जे स्त्रीपर्याय में व्रतनिकी हद्दकूं प्राप्त भये, अर समस्त गृहादिक परिग्रह छांडि कुटुम्बका ममत्व तजि, देहमें निर्ममत्वता धार, पंच इन्द्रियनिके विषय त्यागि, एकवस्त्रमात्र परिग्रहकूं अवलम्बन करि, भूमिशयन क्षुधा तृषा शीतउष्णादि परीषहनिके सहनेकरि, संयमसहित ध्यान स्वाध्याय सामायिकादिक आवश्यकनिकरि युक्त, अर्जिकाकी दीक्षा ग्रहणकरि, संयम—सहित काल व्यतीत करै हैं, तिनके गुणनिमें अनुराग सो वात्सल्यभाव है। तथा मुनीश्वरनिके ज्यों वनमें निवास करते, बाईस परीषह सहते, उत्तम क्षमादि धर्मके धारक, देहमें निर्ममत्व, आपके निमित्त किया औषध अन्न-पानादि नाहीं ग्रहणकरते, उनके तथा एक वस्त्र कोपीन बिना समस्त परिग्रहके त्यागी उत्तम श्रावकनिके गुणनिमें अनुराग वात्सल्य है।

तथा देव गुरु धर्मका सत्यार्थ स्वरूपकूं जानि दृढ़ श्रद्धानी धर्ममें रुचिके धारक अव्रतसम्यग्दृष्टिमें वात्सल्यता करहू । इस संसारमें अपने स्त्री पुत्र कुटुम्बादिकनिमें, तथा देहमें, इन्द्रियनिके विषयनिके साधकनिमें अनादितैं राग लगि रह्या है । पूर्वला अनादि संस्कार ऐसा है सो तिर्यंच हू अपने स्त्री पुत्रनिमें, विषयनिमें अति अनुरागी होय याहीके अर्थि कटे हैं, मरें हैं, अन्य कों मारें हैं, ऐसा कोऊ मोहका अद्भुत माहात्म्य है । ते धन्य पुरुष हैं जे सम्यग्ज्ञानतैं मोहकूं नष्टकरि आत्माके गुणनिमें वात्सल्यता करें हैं । संसारी तो धनकी लालसाकरि अति आकुल भए धर्ममें वात्सल्यता त्यागें हैं । अर संसारिनिके धन बधै है तदि अविवेकी पणा बधै है । समस्त धर्मका मार्ग भूल जाय । धर्मात्मनिमें दूरहीतैं वात्सल्यता त्यागें है । रात्रि-दिन धन-संपदा के बधावनेमें ऐसा अनुराग बधै है—जो लाखनिका धन हो जाय तौ कोटिनिमें वांछा करता, आरम्भ परिग्रहकूं बधावता, पापनिमें प्रवीणता बधावता, धर्म में वात्सल्य नियमतैं छांडे है । जहां दानादिकनिमें परोपकारमें धन लगावता दीखै तहां दूरहीतैं टलि निकलै है । और बहु आरम्भ बहुपरिग्रह अविवेकीपणातैं समीप आया नरकका वास ताकूं नाहीं देखै है । तामें पंचमकालका धनाढ्यां तो पूर्वे मिथ्याधर्म कुपात्र दान कुदाननिमें रुचि ऐसा कर्म बांध आया है सो नरक तिर्यंचगतिकी ... अनंतकाल पर्यन्त

नाहीं छूटै। उनका तन मन वचन धन धर्मकार्यमें नाहीं लागै है। रात्रिदिन तृष्णा अर आरम्भ करि क्लेशित रहैं। तिनके धर्मात्मामें अर धर्मके धारणमें कदाचित् वात्सल्यता नाहीं होय है। अर धन रहित धर्मात्मा होय, ताकूं नीचा मानै है।

तातैं भो आत्मन्! हितके वांछक हो, धनसंपदाकूं महामदकी उपजावनेवाली जानि, अर देहकूं अस्थिर दुखदाई जानि, कुटुम्बकूं महाबंधन मानि, इनसूं प्रीति छांडि अपने आत्माकूं वात्सल्य करो। धर्मात्मामें, व्रतीनिमें, स्वाध्यायमें जिनपूजनमें वात्सल्यता करो। जे सम्यक्चारित्ररूप आभरणकरि भूषित साधुजन हैं तिनको स्तवन करै हैं गौरव करै हैं, कुगति का नाश करै हैं। वात्सल्यगुण के प्रभाव करकै ही समस्त द्वादशांग विद्या सिद्ध होय है। अतैं सिद्धान्तसूत्रमें अर सिद्धान्तका उपदेश करनेवाला उपाध्यायमें सांची भक्तिके प्रभावतैं श्रुतज्ञानावरणकर्मका रस सूख जाय है तदि सकल विद्या सिद्ध होय है। वात्सल्यगुणकै धारककूं देव नमस्कार करै है। अर वात्सल्य करकै ही अठारह प्रकार बुद्धि ऋद्धि अर आकाशगामिनी विक्रिया ऋद्धि दोय प्रकार, चारण ऋद्धि अनेक प्रकार, अर अष्ट प्रकार विक्रियाऋद्धि, तीन प्रकार बलऋद्धि, सप्तप्रकार तपऋद्धि, छह प्रकार रसऋद्धि छहप्रकार औषधऋद्धि, दोयप्रकार क्षेत्रऋद्धि इत्यादि अनेक शक्ति प्रकट होय

हैं। यहां ऋद्धिनिका स्वरूप कहिये तो कथनी वधि जाय यातैं नाहीं लिख्या है। अर्थप्रकाशिका दिनिमें लिख्या है वहातैं जानना।

वात्सल्य करके ही मन्दबुद्धिनिकै हू मतिज्ञान श्रुतज्ञान विस्तीर्ण होय हैं। वात्सल्य के प्रभावतैं पापका प्रवेश नाहीं होय है। वात्सल्यकरके तप [redacted] भूषित होय है। तप में उत्साह बिना तप निरर्थक है। यो जिनेन्द्र को मार्ग वात्सल्य करिही शोभाकूं प्राप्त होय है। वात्सल्यकरिही शुभ ध्यान ऋद्धिकूं प्राप्त होय है। वात्सल्यतैं ही सम्यग्दर्शन निर्दोष होय है। वात्सल्य करके ही दान दिया कृतार्थ होय है। पात्रमें प्रीति बिना तथा देनेमें प्रीति बिना दान निंदा का कारण है। जिनवाणी में वात्सल्य नाहीं, विनय नाहीं ताकूं यथावत् अर्थ नाहीं दीखेगा, विपरीत ग्रहण करैगा। इस मनुष्य जन्मका मण्डन वात्सल्य ही है। वात्सल्यरहित बहुत मनोज्ञ आभरण वस्त्र धारण करना हू पद पद में निंद्य होय है। अर इस लोकका कार्य जो यश को उपार्जन, धर्मको उपार्जन, धनको उपार्जन सो वात्सल्य हीतैं होय है। अर परलोक जो स्वर्गलोक में महर्द्धिक देवपना सो हू वात्सल्य हीतैं होय है। वात्सल्य बिना इस लोकका समस्त कार्य नष्ट हो जाय, परलोकमें देवादिगति नाहीं पावै है।

बहुरि, अर्हंतदेव, निर्ग्रंथगुरु स्याद्वादरूप परमागम दयारूप धर्म में वात्सल्य है सो संसारपरिभ्रमणका नाश करि निर्वाणकूं प्राप्त करै है। तथा वात्सल्यतैं ही जिनमन्दिरका वैयावृत्य, जिनसिद्धान्तका सेवन, साधर्मीनिका वैयावृत्य तथा धर्म में अनुराग, दान देने में प्रीति, ये समस्तगुण वात्सल्यतैं ही होय हैं। जे पट्काय के जीवनि में वात्सल्य किया है ते ही त्रैलोक्य में अतिशय रूप तीर्थंकर प्रकृतिका उपार्जन करै हैं। यातैं जे कल्याण के इच्छुक हैं ते भगवान जिनेन्द्रका उपदेश्या वात्सल्यगुणकी महिमा आनि षोडशमा अंग जो वात्सल्य ताका स्तवनकरि पूजनकरि याका महान अर्घ उतारण करै हैं। सो दर्शनकी विशुद्धता पाय बहुरि तप आचरणकरि, अहमिंद्रादि देवलोककूं प्राप्त होय फिर जगतका उद्धारक तीर्थंकर होय निर्वाणकूं प्राप्त होय हैं। षोडश कारण धर्मकी महिमा अचिंत्य है। जातैं त्रैलोक्यमें आश्चर्यकारी अनुपम विभव के धारक तीर्थंकर होय हैं। ऐसे षोडश भावना का संक्षेप-विस्ताररूप वर्णन किया ॥ १६ ॥



धर्म में प्रवर्तन होजाय, अभक्ष्यभक्षणका त्याग होजाय ऐसा व्याख्यान करना जाके श्रवण करनेतैं हजारों मनुष्यनि के कुदेव कुगुरु कुधर्मके आराधनका त्याग होयकै अर वीतराग देव, दयारूप धर्म, आरम्भ-परिग्रहरहित गुरुनिके आराधनमें दृढ़ श्रद्धान होजाय। तथा ऐसा व्याख्यान करना जो श्रवणकरि बहुत मनुष्य रात्रिभोजन, अयोग्य भोजन, अन्यायका विषय, परधनमें राग छांडि, व्रतनिमें शीलमें संयमभाव में सन्तोषभावमें लीन होय जाय। तथा ऐसा उपदेश करना जाकरि देहादिक पर द्रव्यनितैं भिन्न अपने आत्माका अनुभव होना, पर्यायमें आपा छूटना, जीव अजीवादिक द्रव्यनिका प्रमाणनयनिक्षेपनिकरि निर्णय होय, संशयरहित द्रव्यगुणपर्यायनिका सत्यार्थ स्वरूप प्रगट हो जाना, मिथ्या अन्धकार दूर होना। ऐसा आगमका व्याख्यानतैं सन्मार्ग की प्रभावना होय।

बहुरि घोर तपश्चरण करना जो कायरनिकरि नाहीं धारण किया जाय, ऐसैं तपकरि प्रभावना होय है। क्योंकि विषयानुराग छांडि निर्वांछक होनेकरि आत्माका प्रभाव भी प्रकट होय है, अर धर्मका मार्ग भी तपहीतैं दिपै है। यो तप ही दुर्गतिका मार्गका नष्ट करनेवाला है। तप विना कामादिक विषय ज्ञानकूं चारित्रकूं नष्ट करि दे है। तपके प्रभावतैं कामका क्षय होय रसनाइंद्रियकी चपलता नष्ट होय, लालसाका अभाव होय है। यातैं रत्नत्रयकी प्रभावना

तपहीतैं इह होय है। बहुरि जिनेन्द्रका प्रतिबिंबकी प्रतिष्ठा करना, जिनेन्द्रका मन्दिर कराबना यातैं सन्मार्गकी प्रभावना है। जातैं प्रतिष्ठा करानेकरि जहां तांई जिनबिंब रहेगा तहां तांई दर्शन स्तवन पूजनादिककरि अनेक भव्य पुण्य उपार्जन करैंगे। अर जिनमन्दिर करायेतैं निज गृहस्थनिका ही धन पावना सफल होयगा। पूजन, रात्रिजागरण, शास्त्र-निका व्याख्यान, श्रवण-पठन, जिनेन्द्रका ध्यान, सामायिक प्रतिक्रमण, अनशनादिक तप, नृत्य गान भजन उत्सव जिनमन्दिर होय तदि ही होय। जिनमन्दिर विना धर्मका समस्त समागम होय ही नाहीं, यातैं बहुत कहा लिखिये। अपना परका परम उपकारका मूल प्रतिष्ठा करना अर मन्दिर करवाना है।

उत्कृष्टधर्मका मार्ग तो समस्त परिग्रह छांडि वीत-रागता अंगीकार करना है। परन्तु जाकै प्रत्याख्यान वा अप्रत्याख्यान नाम कषायका उपशम भया नाहीं, तातैं गृहसम्पदा छांटी जाय नाहीं, अर धनसम्पदा बहुत होय तो प्रथम तो जिनका भार अन्यायतूं धन लिया होय ताकै निकट जाय क्षमा ग्रहण कराय उनका धन लौटा देना। बहुरि धन बहुत होय यदि नवीन धन उपार्जनका त्याग करना। बहुरि वीतरागके बधावनेवाले इन्द्रियनिके विषय-निकी लालसा छांडि करि संतरूप होना। फिर जो धन है ताकूं अपने मित्र हितू दुखी बदग भूखा रन्तुजननिमें जे